卐 ॐ 卐

- षष्टम सत्र -

मानव धर्म-दर्शन का साहित्यिक स्वरूप

भारतीय ऋषियों ने प्रकृति के सिद्धान्तों का समाधि अवस्था में अपने चित्तपटल पर स्पष्ट रूप से दर्शन किया (देखा), अतः ***वैदिक धर्म*** को ***'धर्मदर्शन'*** के नाम से भी पुकारा जाता है। निम्न पंक्तियों में 'धर्मदर्शन' के इतिहास पर प्रकाश डाला जा रहा है।

''भारतीय धर्मदर्शन का इतिहास''

विश्व-स्थिति :- सर्वप्रथम विश्व में सर्वत्र किसी न किसी रूप में 'वैदिक-धर्म' का ही प्रसार था, भले ही वह खण्डित रूप में ही क्यों न रहा हो। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है, कि ***'वैदिक-धर्म'*** ही विश्व का प्रथम धर्म है। विश्व के किसी भी भाग में आज पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई करने पर जहाँ-जहाँ भी मूर्तियाँ पायी जा रही हैं अथवा पूर्वकाल में थीं, वे सब इस तथ्य की ओर ही संकेत करती हैं, कि उन सभी स्थानों पर जो भी सभ्यता पनपी हो, वह सर्वप्रथम भारत से ही आयी थी, क्योंकि मूर्तियों की रचना का विचार मूलरूप से वैदिक धर्म द्वारा ही खोजा गया था। इन्डोनेशिया, मलेशिया एवम् थाईलैण्ड जैसे मुस्लिम बहुल देशों में तो हिन्दू धर्म पर आधारित रामकथा का मंचन, मन्दिरों का होना तथा सार्वजनिक स्थानों पर श्रीगणेश आदि की मूर्तियों का प्रदर्शन आज भी प्रचलित है। मूर्तियों के अतिरिक्त और भी ऐसे साक्ष्य हैं, जैसे - ***'धर्म या जीवन दर्शन', 'रीति-रिवाज', 'मान्यताएं और विश्वास', 'काल-ज्ञान',*** व्यक्तियों, स्थानों और वस्तुओं के ***नामकरण, 'भौगोलिक नाम', 'नाप-तोल', 'शिक्षा पद्धति', 'भाषा एवम् कला'*** यह दर्शाते हैं, कि भारतीय संस्कृति एवम् धर्म का ही प्रचार-प्रसार सर्वप्रथम पूरे विश्व में हुआ था[a], परन्तु लगता है, कि महाभारत काल के पश्चात् भारत में ही सम्पूर्णता की समझ का ह्रास होना आरम्भ हो गया तथा वैचारिक भिन्नता के कारण संघर्ष आरम्भ हो गये। समाज अनेक विचारधाराओं में बँटने लगा। परिणामतः विश्व के अन्य क्षेत्र भी भारत से सतत प्राप्त होने वाले धर्म ज्ञान के प्रवाह से वञ्चित होकर पिछड़ते गये। अतएव उन क्षेत्रों का तत्कालीन समाज भी अनेक छोटे-छोटे कबीलों में बँटता गया तथा उनमें भी अज्ञानता, भ्रम, अंधविश्वास एवम् कुरीतियाँ पनपती रहीं।

भारत में शोध कार्यों का निरीक्षण, परीक्षण एवम् विश्लेषण :- वस्तुतः सतयुग से लेकर महाभारत काल पर्यन्त आश्रमों में शोध कार्य निरन्तर चला करते थे तथा आश्रमों में ही क्षेत्रीय समितियाँ हुआ करती थीं, जो समाज के हर वर्ग पर अपनी पैनी दृष्टि रखती थीं तथा समाज के हर आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक एवम् आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान का कार्य

---

a इस सम्बन्ध की विस्तृत जानकारी हेतु *'विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति'* पुस्तक पठनीय है, लेखक- श्री रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, प्रकाशक-सांस्कृतिक गौरव संस्थान, सेक्टर-5, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली-22

निरन्तर करती रहती थीं। सभी क्षेत्रीय समितियों पर शासन करने वाली केन्द्रीय समिति सम्भवतः ज्ञान की नगरी काशी में थी, जहाँ पर सभी प्रकार की खोजों पर अन्तिम मोहर लगायी जाती थी, जबकि शासकीय शीर्षस्थ कार्यालय प्रयागराज में हुआ करता था, जहाँ से राजाओं को नियमों की सूचना भेजी जाती थी।

पूरे भारत में चार कुम्भ पर्व स्नान केन्द्र - *(a)* ***प्रयागराज*** (इलाहाबाद) *(b)* ***हरिद्वार*** *(c)* ***नासिक*** एवम् *(d)* ***उज्जैन*** आदिकाल से चले आ रहे हैं। इन स्थानों पर लाखों आस्थावान भक्त प्रति बारह वर्षों में सूर्य के क्रमशः मकर राशि, मेष राशि एवम् सिंह राशि पर स्थित होने के समय एकत्रित होते हैं एवम् श्रीगंगाजी, गोदावरी एवम् क्षिप्रा नदियों में स्नान कर तथा महात्माओं के प्रवचन सुनकर पुण्य लाभ लेते हैं। चारों कुम्भ पर्वों पर कौन-कौन से ग्रहों की स्थिति होती है, इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है :-

नगर का नाम	**नदी का नाम**	**ग्रहों की स्थिति**	**अन्य जानकारी जैसे दिन एवम् नक्षत्र आदि**
उज्जैन	क्षिप्रा	गुरु - सिंह पर सूर्य - मेष पर चन्द्रमा - तुला पर	सोमवार - स्वॉति नक्षत्र वैशाख पूर्णिमा
नासिक	गोदावरी	सूर्य, गुरु, चन्द्र सिंह - राशि पर	भाद्रपद की अमावस्या
हरिद्वार	गंगा	सूर्य - मेष पर गुरु - कुम्भ पर	चैत्रमास
प्रयागराज	त्रिवेणी	सूर्य - मकर चन्द्रमा - मकर गुरु - वृष	माघ मास की अमावस्या

ऐसा प्रतीत होता है, कि उपरोक्त ग्रहों की स्थिति के कारण पृथ्वी के मानवों पर सामूहिक रूप से सात्विक प्रभाव पड़ता है। इन क्षणों में की गयी पूजा-अर्चना का मानसिक एवम् शारीरिक रूप से विशेष लाभ होता है। *इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से खोज की जानी चाहिए।*

ऐसा प्रतीत होता है, कि उपरोक्त चारों तीर्थ विशिष्ट भौगोलिक स्थिति एवम् ब्रह्माण्डीय प्रभाव के कारण स्थापित किए गये हैं। पौराणिक कथा है, कि इन्द्र के पुत्र जयन्त द्वारा असुरों से अमृत कलश की रक्षा करते हुए घट से अमृत की बूँदें जिन चार स्थानों पर गिरीं, वहीं पर इन तीर्थों को मान लिया गया। ये वे केन्द्र हैं, जहाँ पर पूर्व काल में शोधकर्त्ता अपने-अपने शोध कार्यों को किसी आँकड़े एकत्रित करने वाली संस्था के पास जमा करवाते थे। ये आँकड़े आश्रमों तक पहुँचाए जाते थे, जहाँ पर इनका अन्तिम परीक्षण और विश्लेषण किया जाता था। प्रथम दृष्टि में निरीक्षण का कार्य इन चार केन्द्रों में स्थित विद्वान करते थे अर्थात् ये केन्द्र छानबीन समितियों (Screening committees) का कार्य करते थे। आश्रमों में जहाँ पर वास्तविक शोध संस्थान थे, शोध छात्रों द्वारा भेजे गये इन शोध-पंत्रकों (Research Papers) पर अन्तिम

निर्णय लिया जाता था। आश्रमों में स्वयम् भी निरन्तर शोध कार्य चला करते थे। शोधों पर अन्तिम निर्णय के पश्चात् नियम बनते थे और उन नियमों को प्रजा द्वारा अनुपालन हेतु राजाओं के पास भेजा जाता था। उन नियमों का प्रचार-प्रसार विशेष रूप से संन्यासियों द्वारा भारत के सभी राज्यों में घूम-घूम कर किया जाता था। इस सारे कार्य का निरीक्षण आश्रमों की निरीक्षण समितियाँ राजाओं के पूर्ण सहयोग से अनुपालन करवाने के लिए उत्तरदायी होती थीं। ***इस सारे व्यायाम का उद्देश्य पूरे राष्ट्र को कठोरतापूर्वक एक वैचारिक सूत्र में बाँधे रखना था।***

परन्तु लगता है, कि द्वापर युग की समाप्ति पर एवम् कलियुग के प्रवेश से तथा ऋषि वेदव्यास द्वारा वेदों के संकलन के पश्चात् वर्णाश्रम व्यवस्था चरमराने लगी थी। परिणामतः समाज आध्यात्मिकता से हटकर भौतिकता की ओर अग्रसर होने लगा।

आश्रमों द्वारा संचालित समितियों का नियन्त्रण समाप्त होने के कारण समाज स्वच्छन्द होता गया, अतएव अनेक वादों तथा विचारधाराओं का प्रादुर्भाव होने लगा। इतिहास के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है, कि पूर्वकाल से चले आ रहे प्रयागराज तथा काशी दो केन्द्रीय स्थल ही शेष रह गये थे, जिन केन्द्रों में विद्वत् परिषदों द्वारा अनवरत बैठकें की जाती थीं तथा समाज की आध्यात्मिक समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया जाता था। इसीलिए समाज में आज भी इन स्थलों को विशेष सम्मान प्राप्त है। परन्तु काल की गति से विदेशी आक्रमणकर्त्ताओं द्वारा इन ज्ञान केन्द्रों का भी विध्वंस हो गया। तब न केवल अनेक बहुमूल्य पाँडुलिपियाँ जला कर राख कर दी गयीं, अपितु चुन-चुन कर विद्वानों को कत्ल भी किया गया। ***इस विध्वंस के फलस्वरूप, तब से भारत अज्ञानता के गम्भीर से गम्भीरतम काल में प्रवेश करता चला गया।***

परिणामस्वरूप समाज में तरह-तरह के अंधविश्वास एवम् भ्रान्तियाँ व्याप्त होती गयीं। समय-समय पर सुधारकों ने कुछ सामयिक सुधार भी किए, परन्तु वे सुधार भी किसी न किसी रूप में किसी दूसरे प्रकार के अन्धविश्वास में जकड़ कर रह गये। इस प्रकार अनेक पन्थों का निर्माण होता रहा, क्योंकि ***किसी भी एक व्यक्ति के पास पूर्णता की समझ होना ब्रह्मा के विधान में ही नहीं है, अतएव नए पन्थ के निर्माण से संकुचित सोच के कारण कट्टरता को ही बढ़ावा मिला तथा समाज अनेक टुकड़ों में बँटता चला गया। जितने सुधारक आए, उन्होंने समाज को सुधारने का एकल प्रयास ही किया।*** उनके शिष्यों ने भी अपने गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को ही आगे बढ़ाया तथा अहम् के कारण उनमें भी विभाजन होते रहे। ***आज भी समाज में गुरुओं की एक लम्बी कतार है, परन्तु वे अलग-अलग विचारधाराओं में बँटे हुए हैं। सनातन वैदिक धर्म की रक्षा हेतु उन सभी का एक मंच पर आना तथा साथ ही केन्द्रीय संगठन की स्थापना की आज परम आवश्यकता है, ताकि पूरा विश्व एक वैचारिक एकता के सूत्र में पुनः पिरोया जा सके। ऐसा महान कार्य वैज्ञानिक सोच द्वारा ही सम्भव है, ऐसी आशा है।*** अस्तु !

परिवर्तन काल में भारत की स्थिति :-

ऐसा लगता है; कि बदलते समय के प्रभाव से समाज घड़ी के पैन्डुलम की भाँति किसी

न किसी अतिवादिता की ओर झुक जाता है। यद्यपि वैदिक धर्मग्रंथों [a] ***में कर्म से ही वर्ण को मान्यता प्रदान की गई है,*** *तथापि भगवान बुद्ध के समय में जन्म से वर्ण की मान्यता के कारण समाज में छुआछूत का प्रचलन बहुत बढ़ गया था। उस अतिवादिता को समाप्त करने के लिए उन्होंने जन्म से वर्ण के विचार को अमान्य घोषित कर दिया तथा कर्म से वर्ण के सिद्धान्त की पुनर्स्थापना की। ईश्वर के नाम पर हो रहे पाखण्ड को मिटाने के लिए ईश्वर है अथवा नहीं, इस पर उन्होंने मौन धारण कर लिया।*

भगवान महावीर के समय में बहुत ज्यादा पशुओं की हिंसा हो रही थी, अतएव उन्होंने अहिंसा पर अत्यधिक ज़ोर दिया। अहिंसा के प्रति समाज सदैव सजग बना रहे, इस स्मृति को बनाए रखने के लिए मुँह में सांकेतिक रूप से पट्टी बाँधे रखने का उपदेश दिया। गुरु नानक देव, कबीर साहब एवम् दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया, क्योंकि उस काल में लोग ऐसा मानने लगे थे, कि मूर्तिपूजा ही सब कुछ है तथा मूर्तिपूजा से ही सब कुछ मिलने वाला है, अतएव मूर्तिपूजा के नाम पर समाज में अकर्मण्यता आ गयी थी एवम् समाज का शोषण हो रहा था। मूर्ति भंजकों से धर्म-रक्षा हो सके, इस लिए गुरु नानक देव एवम् कबीर साहब को मूर्तिपूजा का खण्डन करना पड़ा। वे सभी सुधारक थे। ***उनका उद्देश्य 'वैदिक-धर्म' के मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या करना था एवम् तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों एवम् शैक्षिक योग्यता के अनुरूप सीख देकर उस समय प्रचलित कुरीतियों को दूर करना था।***

भारत में एक ऐसा काल भी रहा है, कि जब पूरे देश में विष्णु भक्तों और शिव भक्तों में एक लम्बे समय तक खूनी संघर्ष चला था। आज भी मान लीजिए, कुछ लोग श्री हनुमान जी के भक्त हैं, तो कुछ दूसरे लोग श्रीगणेश जी के। तब दोनों गुटों में अपने-अपने देवता के प्रति अतीव अन्धश्रद्धा के कारण संघर्ष होना स्वाभाविक है। दक्षिण भारत के मीनाक्षीपुरम् मन्दिर में वर्ष में दो बार भगवान को हाथी पर बिठा कर जुलूस निकाला जाता है। पण्डितों में इस बात पर विवाद छिड़ गया, कि हाथी के मस्तक पर ***'वैष्णवी'*** तिलक लगाया जाये अथवा ***'शैव'***। उस पर बीस वर्ष तक मुकदमा चला और अन्त में सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया, कि वर्ष में एक बार हाथी के मस्तक पर तिलक ***'शैव'*** ढंग से लगाया जाये तथा दूसरी छमाही में ***'वैष्णवी'*** ढंग का लगाया जाए।

इतिहास के पन्नों में लिखी अंधविश्वासों की कथाएं तथा धर्म एवम् देश का पतन :-

1. झंडा गिरना-हार का प्रतीक :- लगभग एक हजार वर्ष पूर्व समाज में ऐसी मान्यता थी, कि दुश्मन के साथ भारतीय सेनाएं यदि लड़ रही हों और इसी बीच मन्दिर का झंडा गिर जाये तो समझ लेना चाहिए, कि अब लड़ाई लड़ने से जीत होने वाली नहीं है, क्योंकि झंडा गिरना इस बात का संकेत है, कि भगवान नाराज़ हो गये हैं। सिंध प्रान्त में राजा दाहिर पर बिनकासिम नामक विदेशी आक्रान्ता ने 712 ई. में हमला किया और इस अंधश्रद्धा का लाभ

---

[a] *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।। (गीता-4/13)*
अर्थ :- ***हे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा उनके गुण, कर्म और स्वभाव अर्थात् प्रवृत्ति के आधार पर रचे गये हैं,*** उनके कर्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्ता ही जान।

लेने के लिए उसने पुजारी को लालच देकर झंडा गिरवा दिया। राजा की जीतती हुई फौज ने लड़ना बन्द कर दिया और फिर जो लूटमार व कत्लेआम तथा बलात्कार हुए, वे सब बातें इतिहास में काले अक्षरों में लिखी हैं।

2. भगवान शंकर का रौद्र रूप :- गुजरात के सोमनाथ मन्दिर पर महमूद गजनवी ने हमला किया तब अन्धविश्वासियों ने जनता को समझाया, कि ***भगवान शंकर तीसरा नेत्र खोलेंगे*** और आक्रान्ता भस्म हो जायेगा, लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः भक्तों द्वारा भगवान शंकर के रौद्र स्वरूप को धारण करके शत्रु का विनाश किया जाना चाहिए था, जो नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ, कि महमूद गजनवी ने भगवान शंकर की मूर्ति को हथोड़ों से तोड़-तोड़ कर कुएं में डाल दिया और खूब लूटमार की एवम् कत्लेआम और बलात्कार किए। बाद में उन्हीं अन्धविश्वासियों ने कहा, कि भगवान शंकर स्वयम् कुएं में कूद गये।

3. गायों को फौज के आगे खड़ा करना :- मोहम्मद गौरी ने अपनी फौज के आगे सौ गायों को खड़ा कर दिया और भारतीय फौज ने हथियार डाल दिए तथा मातृभूमि विदेशियों को खुशी-खुशी दे दी, ***क्योंकि गौ (गाय) हमारी माता है, कहीं उसको चोट न लग जाए ?***

सर्वोच्च न्यायालय एवम् धर्म :- इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय की सम्पूर्ण पीठ (Bench) ने 11-12-1995 को यह निर्णय [a] दिया था, कि वैदिक धर्म कोई रिलीजन (मजहब) नहीं है, वह तो जीवन जीने की एक खास विधा अर्थात् शैली (Way of life) है। वस्तुतः उस समय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष वैदिक धर्म का केवल सांस्कृतिक पक्ष ही प्रस्तुत किया गया था, परिणाम यह हुआ है, कि न्यायालय के निर्णय में वैदिक धर्म के मूलभूत प्राकृतिक सिद्धान्तों *(जिनकी चर्चा प्रथम सत्र में संक्षेप में तथा द्वितीय सत्र में विस्तार से की गयी है)* का समावेश नहीं हो पाया था। इस कारण ***'धर्म'*** [b] एवम् ***'रिलीजन'*** का अन्तर पूर्णतः स्पष्ट नहीं हुआ है। परिणामतः वैदिक धर्म के शाश्वत एवम् सार्वभौमिक स्वरूप का संदेश विश्व समाज को गया ही नहीं है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार सेक्युलरिज़्म (Secularism) शब्द का अर्थ होता है - "नैतिकता, जो किसी भी ***'मज़हब'*** (Religion) के नियमों से अनुबन्धित न हो" *(morality should be non-religious) ।* भारत के संविधान निर्माताओं की कदाचित् यह सोच रही होगी, ***कि धर्मानुसार नैतिकता तो हो, परन्तु भारत का संविधान किसी सम्प्रदाय*** (मज़हब/Religion) ***विशेष से जुड़ा हुआ न हो।*** भूल से यहाँ पर नेताओं द्वारा 'मज़हब' तथा 'धर्म' के अर्थ को ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण दोनों को समान दर्जा दे दिया गया है। संविधान के अनुसार राज्य - *(i)* सभी सम्प्रदायों के प्रति समानता का भाव बनाए रखेगा तथा *(ii)* सभी सम्प्रदायों को अपनी विचारधारा को प्रचारित करने का

---

a संदर्भ - AIR 1996, S.C. Page 1113 - बाल ठाकरे बनाम प्रभाकर काशीनाथ कुण्टे इत्यादि।

b धर्म पर विस्तृत चर्चा द्वितीय सत्र में की गयी है।

समान अधिकार होगा। इसीलिए सरकार आज 'सेक्युलरिज़्म' का अर्थ ***'सर्व-धर्म-समभाव'*** के रूप में प्रचारित कर रही है। परन्तु अज्ञानतावश ***'सर्व-धर्म-समभाव'*** शब्द को ग़लत तरीके से प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि वे मज़हब (Religion) व्यक्ति विशेष द्वारा प्रचारित 'मत' हैं, ***जो तात्कालिक स्थानीय समाज में आयी कुरीतियों के सुधार के लिए थे तथा वे प्रकृति के सार्वकालिक एवम् सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हैं, अतएव धर्म नहीं हैं। नेताओं द्वारा 'सर्वधर्म समभाव' शब्द प्रयोग की पृष्ठभूमि में 'सर्वमत समभाव' की भावना निहित है, जो धर्म का पूर्ण स्वरूप नहीं है। अतएव उनको सर्व-धर्म-समभाव के विचार से जोड़ा जाना भ्रान्तिपूर्ण ही नहीं अपितु भारी भूल भी है।***

इस अज्ञानता से धर्म की सही विचारधारा को भारी नुकसान पहुँचा है। धर्म के अर्थों को ग़लत तरीके से प्रस्तुत किये जाने के कारण ही आज पूरे विश्व में धर्म के प्रति भ्रान्ति फैली हुई है।

उपासना के छह मुख्य मार्ग :- भारतीय मनीषियों ने, परमात्मा तक पहुँचने हेतु छह पन्थों (मार्गों) - *(i)* ***'निष्काम-कर्म-योग'*** *(ii)* ***'भक्ति-योग'*** *(iii)* ***'सांख्य-योग'*** *(iv)* ***'ज्ञान-विज्ञान-योग'*** *(v)* ***'अष्टांग-योग'*** तथा *(vi)* ***'तन्त्र-योग'***, का आविष्कार किया है। इन सभी मार्गों को जोड़ने के दो सूत्र हैं। पहला सूत्र है - ***प्राकृतिक सिद्धान्तों***[a] ***की सभी पन्थों द्वारा मान्यता एवम् अनुपालन*** तथा दूसरा सूत्र है - ***सभी मार्गों का एकमात्र स्वामी 'ब्रह्म'।*** भारतीय समाज में अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनमें ***'शैव', शाक्त*** एवम् ***'वैष्णव'*** सम्प्रदायों को मुख्य रूप से जाना जाता है। ***'शैव'*** मतावलम्बी भगवान शंकर को अपना आराध्यदेव मानते हैं, जबकि ***शाक्त*** व ***'वैष्णव'*** क्रमशः ***'आदि-शक्ति (दुर्गा)'*** की तथा ***'विष्णु'*** की उपासना करते हैं। इस प्रकार इन संदर्भों में ***सर्वधर्म-समभाव*** (Secular) शब्द का प्रयोग करना बिल्कुल ठीक है, ताकि सभी ***'पन्थ'*** आपस में एक-दूसरे का आदर करें तथा उनमें कोई वैमनस्य पैदा न हो। उदाहरण के लिए ***'जैन', 'बौद्ध'*** एवम् ***'सिख'*** पन्थों और ***'वैदिक-धर्म'*** के बीच सर्वधर्म समभाव (Secular) शब्द का प्रयोग करना भी उचित है, कारण कि, भगवान-महावीर, भगवान-बुद्ध एवम् श्री नानक देवजी को देश, काल और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ईश्वरीय प्रेरणा से तत्कालीन समाज में फैले अन्धविश्वास से उत्पन्न कुरीतियों का खण्डन करना पड़ा था। सिख गुरुओं ने मुग़लों के शासनकाल में परिस्थितियों के अनुरूप ***'हिन्दू-धर्म'*** की एकता की रक्षा के लिए स्थानीय भाषा में लाखों पृष्ठों के वैदिक साहित्य का संक्षिप्तीकरण कर दिया था, ताकि हिन्दुओं में ***ईश्वर*** के प्रति और हिन्दू ***'धर्म-ग्रंथों'*** के प्रति चेतना बनी रहे। इसे अलग ***'धर्म'*** नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह हिन्दू धर्म का एक संक्षिप्त स्वरूप ही है। इस विचार को हमें विशाल परिप्रेक्ष्य में समझना है।

वैदिक धर्म दर्शन का विस्तार :-मध्य एशिया तथा यूरोप एवम् मिश्र आदि देशों ने भारत से मिले आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर अपनी-अपनी सभ्यताओं का विकास किया, अतः बेबीलोनिया, सुमेरियन, मिश्र, यूनान, रोम आदि की सभ्यताएं इतिहास की श्रेष्ठ धरोहर मानी

---

a *'प्राकृतिक सिद्धान्तों'* का विस्तृत वर्णन *द्वितीय सत्र* के 'स्व-अनुशासन' शीर्षक के अन्तर्गत एवम् अनुच्छेद-1 से 6 तक किया गया है।

जाती हैं। इन क्षेत्रों में भौगोलिक परिस्थितियाँ खेती-बाड़ी के अनुकूल थीं, अतएव ऐसा सम्भव हो सका। जहाँ तक आध्यात्मिक ज्ञान का सम्बन्ध है, ***उन सभी सभ्यताओं के पास भारत जितना आध्यात्मिक ज्ञान कभी नहीं हो पाया। परन्तु विश्व के अलग-अलग भू-भागों में जो बर्फीले अथवा रेगिस्तानी क्षेत्र थे, मानव सभ्यता का विकास आदि मानव से शुरू होकर पाषाण युग और फिर पशु पालन तक ही सीमित रह गया। कारण था, कि उन क्षेत्रों में खेती-बाड़ी के लिए भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं। इन क्षेत्रों में भारत से जो ज्ञान गया, वह भी उन कबीलों की बुद्धि की सीमित ग्राह्यता के कारण बहुत निम्न स्तर तक ही रह गया। सबसे सरलतापूर्वक समझा जाने वाला ज्ञान का प्रकाश उन कबीलों के लिए मूर्तियों के माध्यम से भारत ने ही दिया था, क्योंकि उन सभी क्षेत्रों में पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई करने पर अथवा वैसे भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो पूजा-अर्चना करने की सरलतम विधि की भारत की विचारधारा का ही एक अंश हैं।*** अतएव विश्व के अन्य भागों में भी जहाँ पर लगता है, कि भारत से भी अधिक अंधविश्वास तथा कुरीतियाँ थीं और अनेक कबीले धर्म के नाम पर लगातार रक्तपात में तल्लीन थे, उनके गुरु ने उन्हें भाई-चारा, प्रेम एवम् सौहार्द की शिक्षा दी थी, ताकि राग-द्वेष दूर होकर रक्त-पात बन्द हो सके। वह बात उस समाज को समझ ही नहीं आयी तथा उन लोगों ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया। ***पश्चिम एशिया में अनेक देवी-देवताओं की पूजा के कारण रक्तपात हो रहा था, अतएव उन्हें एक निराकार परमात्मा की पूजा की शिक्षा दी गयी। यह विचार विश्व में यथाशीघ्र प्रचारित किया जा सके, इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तथा तत्कालीन समाज की शैक्षिक योग्यता और उनकी समझ के अनुरूप उन्हें जन्नत की गारंटी दी गयी।*** जन्नत का भावार्थ है - ईश्वरीय आनन्द, परन्तु तत्कालीन समाज की समझ में स्वादिष्ट भोजन एवम् कामवासना की पूर्ति ही ईश्वरीय आनन्द था, अतएव जन्नत का दृश्य भी उसी प्रकार का प्रस्तुत किया गया, लगता है। ***समयानुसार जन्नत (ईश्वरीय आनन्द) की मूल भावना का विकास होना चाहिए था, जिसके न होने से आज सम्पूर्ण मानवता ख़तरे में पड़ गयी है।***

मज़हब एवम् विज्ञान :- आज पूरे विश्व में विज्ञान एवम् तकनीकी शिक्षा के विकास के कारण विश्व समाज का शैक्षिक स्तर बहुत ऊँचा हो चुका है, विशेषकर तकनीकी ज्ञान का बेहद विकास हुआ है, अतएव मध्य एशिया, यूरोप, अमेरिका आदि विश्व के अनेक स्थानों पर गगनचुम्बी भवन व शानदार रहन-सहन से पूरा विश्व चमत्कृत है, किन्तु इन तथाकथित सभ्य देशों को जो ईश्वरीय ज्ञान उनके गुरुओं ने इनकी भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों एवम् शैक्षिक योग्यता के अनुरूप लगभग 1500 से 2000 वर्ष के बीच दिया था, वही शाब्दिक ज्ञान आज भी उनका मार्गदर्शन कर रहा है। भारत जैसे विविध ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न देश के लिए वह ज्ञान किसी प्रकार भी समीचीन नहीं है। उस पुरातन ज्ञान का ***जैसा क्रमिक विकास भूतकाल में भारत में हुआ था, यदि वैसा उन प्रदेशों में भी हुआ होता, तो आज विश्व में हो रहे रक्तपात की स्थिति ही न बनती। अतएव आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'मजहब' की शिक्षा का समयानुकूल परिमार्जन होना आवश्यक है।***

वैज्ञानिक बुद्धि की आवश्यकता :- उपरोक्त प्रकार के संघर्ष अन्धश्रद्धा के कारण सदैव से होते रहे हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। ***समाज का अधिकांश जन-समुदाय श्रद्धा, विश्वास***

पर ही धर्म को समझता तथा मानता है। अस्सी प्रतिशत से भी अधिक जनता भावना प्रधान तथा साहित्य एवम् कला में रुचि रखती है और बहुत से वैज्ञानिक बुद्धि रखने वाले लोग भी भावना में बहकर श्रद्धा, विश्वास के मार्गी बन जाते हैं। बहुत थोड़े से लोग ही वैज्ञानिक बुद्धि वाले (विज्ञानी) अर्थात् तर्क पर आधारित ज्ञान को समझ पाते हैं और उस मार्ग पर चलते भी हैं। वैज्ञानिक बुद्धि से अर्थ है, जो क्या, क्यों और कैसे, जैसे प्रश्नों को खोजते-खोजते किसी भी विषय की तह तक पहुँचकर सत्य का अन्वेषण कर लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट कहा है, कि "मैं तुझे परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान की शिक्षा दूँगा, जिसको जानने के पश्चात् कुछ और जानना शेष नहीं रहेगा तथा तू इस दुःखरूप संसार सागर से मुक्त हो जाएगा [a] ।"

रामचरितमानस में भगवान राम ने भी कहा है, कि :-

चौ. :- ***तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुँ ते अति प्रिय विज्ञानी [b] ।।***

अर्थ :- मुझे ज्ञानी तो प्रिय हैं, परन्तु विज्ञानी को मैं ज्ञानी से भी अधिक प्रेम करता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है - यद्यपि आस्था-विश्वास में बहुत बड़ा बल है, परन्तु मैं ऐसे किसी धर्म को नहीं मानता, जो तर्क की कसौटी पर कसा न जा सके। ***आस्था-विश्वास (अति श्रद्धा) कट्टरता की ओर ले जाते हैं और फिर उससे कुविश्वासों का जन्म होता है।***

भारत में एक वर्ग ऐसा भी है, जो लगातार हिन्दू परिवार में उत्पन्न होकर भी वर्षों से हिन्दुओं के इस सांस्कृतिक पक्ष का विरोध करता रहा है और अन्य सम्प्रदायों (मज़हबों) की प्रशंसा करता आया है। शायद उनका मानना है, कि आखिर दोनों में अन्तर ही कहाँ है, क्योंकि दोनों ***'तथा-कथित धर्म'*** अन्ध-श्रद्धा पर ही तो आधारित हैं, फिर क्यों न ऐसे धर्म का पक्ष लिया जाये, जो सरल लगता हो। आखिर, बहुत सारे देवी-देवताओं के चक्कर में पड़ा भी क्यों जाए ? एक ही सर्वशक्तिमान परमात्मा की उपासना के विचार को ही क्यों न महत्त्व दिया जाए ? *(बहुत सारे देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना अर्थात् बहु-देववाद वैदिक धर्म में क्यों मान्य है, इस पर पहले सत्र में स्पष्टीकरण दिया जा चुका है)।* समाज में दूसरे अति बुद्धिवादी एवम् वामपंथी लोग भी हैं, जो हिन्दुओं के इस सांस्कृतिक पक्ष से अधिक सहमत नहीं हैं, विशेषकर पत्रकार समाज तथा कई टी.वी. चैनलों के प्रबन्धक लोग। उन्हें तीर्थों में फैले पाखण्ड, बाल-विवाह एवम् सती-प्रथा आदि जैसी कुरीतियों से बड़ी निराशा हुई है। वास्तव में वे हमारे हित-चिंतक ही हैं, अतएव 'वैदिक धर्म दर्शन' के वैज्ञानिक पक्ष की जानकारी को उजागर करने की आज नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि आज तक की वैज्ञानिक खोजों से वैदिक धर्म ग्रंथों के विचारों की पुष्टि ही हुई है।

---

a *इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे। ज्ञानंविज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। (गीता-9/1)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! तुझ जैसे दोष दृष्टि रहित भक्त के लिए ***इस परम गोपनीय ज्ञान को विज्ञान सहित कहूंगा, जिसको जानकर तूं दुःखरूप संसार से मुक्त हो जायेगा।***
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः। यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।। (गीता-7/2)
अर्थ :- हे अर्जुन ! ***मैं तेरे लिये इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्णता से कहूंगा, जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता।***

b *श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड दो. 85-86 के मध्य*

आज के आधुनिक विज्ञान की क्वैन्टम भौतिकी भी उपनिषदों की भाषा बोल रही है[a]। उपनिषदिक ज्ञान वेदों का वैज्ञानिक पक्ष है। यदि इस ज्ञान को आधुनिक विज्ञान की भाषा में प्रचारित किया जाये, तो वामपन्थी एवम् अति बुद्धिवादी समुदाय भी संतुष्ट होगा। भावी पीढ़ी, जो स्कूलों में और बारह कक्षा तक विज्ञान की शिक्षा ले रही है अथवा ले चुकी है, भारतीय धर्मदर्शन के वैज्ञानिक पक्ष को बखूबी समझने की क्षमता रखती है। यदि उन्हें उचित मार्गदर्शन दिया गया, तो वे भारतीय धर्म का विश्व में अवश्य प्रसार करेंगे। अस्तु !

यह बात साफ है, कि जब-जब समाज से वैज्ञानिक समझ का लोप हुआ है, तब-तब भ्रम, अंधविश्वास, पाखण्ड और कुरीतियों का जन्म हुआ है तथा वैचारिक भिन्नता उत्पन्न हुई है। परिणामतः समाज अनेक टुकड़ों में बँटता रहा और आपस में संघर्ष तथा रक्तपात भी लम्बे काल तक चला। श्रेष्ठ बात तो यह होगी, कि हम सभी मिलकर विज्ञान के युग का लाभ उठाएं तथा देश, समाज एवम् सम्पूर्ण मानवता का 'ज्ञान-विज्ञान कार्यक्रम' द्वारा ज्ञानवर्धन करके उत्थान करें।

प्राकृतिक सिद्धान्तों से धर्म के लक्षणों का विकास :-

प्राकृतिक सिद्धान्तों से धर्म के लक्षणों का किस प्रकार क्रमशः विकास हुआ लगता है, इस पर निम्न पंक्तियों में चर्चा की जा रही है।

1. गति/चक्र/परिवर्तनशीलता का सिद्धान्त :- प्रकृति में निरन्तर गति हो रही है, परिवर्तन हो रहा है और प्रत्येक वस्तु चक्राकार गति में घूम भी रही है; उदाहरणार्थ - ऋतु चक्र, रात-दिन पुनः रात, वृक्ष से बीज पुनः वृक्ष, समुद्र से भाप बनकर ग्लेशियर फिर नदी प्रवाह पुनः

---

a In the Eastern view, the reality underlying all phenomena is beyond all forms and defies all description and specification. It is therefore, often said to be formless, empty or void. But this emptyness is not to be taken for mere nothingness. It is on the contrary, the essence of all forms and the source of all life. Thus the Upnishads say –
"Brahman is life, Brahman is joy, Brahman is the void" ..... joy, verily, that is the same as the void. The void, verily, that is the same as joy – Chhandogya Upnishad - 4.10.4
Like the quantum field, it gives birth to an infinite variety of forms, which it sustains and eventually, reabsorbs. As the upnishads say –
Tranquil, let one worship it. सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत।
As that from which he came forth. अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके।
As that into which he will be dissolved. पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति प्रेत्य भवति।
As that in which he breathes. स क्रतुं कुर्वीत। (छान्दोग्योपनिषद्-3/14/1)
The phenomenal manifestations of the mystical void, like the sub-atomic particles, are not static and permanent, but dynamic and transitory, coming into being and vanishing in one ceaseless dance of movement and energy. Like the sub-atomic world of the physicist, the phenomenal world of the Eastern mystic is a world of Samsara – of continuous birth and death.
(Page 234-235 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)

ग्लेशियर, शक्ति से पदार्थ, पदार्थ का पुनः शक्ति में परिवर्तन एवम् मृत्यु-जन्म-मृत्यु आदि। अतएव इस प्राकृतिक नियम के अनुसार परमात्मा ने प्रकृति में ऐसी दृढ़ व्यवस्था कर दी है, कि दिया हुआ दान लौटकर देने वाले को बारम्बार वापिस मिलता रहता है। अतएव मानव का भी कर्त्तव्य है, कि प्रकृति के इस नियम का अपने जीवन में अनुपालन करे, अतएव इस नियम को ध्यान में रखते हुए ***अपने जीवन के हर क्षेत्र को चक्राकार रूप में गतिशील बनाए रखे; कभी भी ठहराव न आने दे।*** इसी में मानव का सम्पूर्ण कल्याण है। इस सिद्धान्त के व्यावहारिक स्वरूप का वर्णन निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है।

व्यावहारिक स्वरूप :- समाज के हर घटक द्वारा श्रम पूर्वक कमाये गये धन को अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् शेष को निष्काम भाव से मानवता को समर्पित कर देना चाहिए। इस प्रकार समाज की अर्थव्यवस्था संतुलित रहेगी तथा चोर डाकू एवं ठगों से जन जीवन त्रस्त नहीं होगा। यदि समृद्ध परिवार समाज के कमज़ोर वर्ग के लोगों के लिए रोटी, कपड़ा, मकान एवम् शिक्षा की निरन्तर चिन्ता करते रहें, तो उनका स्वयम् का जीवन और धन-सम्पत्ति स्वाभाविक रूप से सुरक्षित रहेगी। चारों ओर सुख शान्ति का साम्राज्य रहेगा। आज लोग लोहे के सीखचों से अपना घर सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं तथा दरवाजे पर गनमैन तैनात रखते हैं, परन्तु महल के भीतर रहकर डायबिटीज़ आदि रोगों के कारण दो रोटी भी हज़म नहीं कर पाते। अधिक पैसा, मात्र चिन्ता का कारण ही बनता है। मृत्यु को प्राप्त होने पर धन गलत हाथों में पड़कर नष्ट हो जाता है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने विधान बनाया था, कि हर गृहस्थी एवं वानप्रस्थी को तन, मन एवम् धन से समाज सेवा करनी चाहिए विशेषकर समाज के कमजोर वर्ग (दरिद्रनारायण) की निष्काम भाव से यथाशक्ति सहायता करने का प्रयास करना चाहिए। सम्पूर्ण रूप से सुखी होने की यही कुञ्जी है। समाज में सर्वत्र संतोष व समृद्धि होगी, तो व्यक्ति भी सुखी व सुरक्षित रहेगा। भारतीय चिन्तकों ने धन के तीन ही आयाम बतलाए हैं- *(**a**)* स्वयम् द्वारा धन का उपभोग करना (आनन्द लेना) *(**b**)* समाज के कमज़ोर वर्ग के पात्र व्यक्तियों की सहायता हेतु निष्काम भाव से व्यय करना *(**c**)* धन की अन्तिम गति है उसका विनाश। आवश्यकता से अधिक धन या तो चोर-डाकू या ठग ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है या मृत्यु के पश्चात् कपूत संतान नष्ट कर देती है।

गरीबों को देखकर द्रवित होना, उनकी सहायता करना अर्थात् दया एवं करुणा भावना का विकास, इसी प्राकृतिक सिद्धान्त की समझ का परिणाम है। निःसन्देह प्राणी मात्र के प्रति करुणा का भाव रखना श्रेष्ठ है, परन्तु करुणा भाव के वशीभूत होकर दान देने के स्थान पर कर्त्तव्य समझ कर ***निष्काम भाव से दान देने से ही व्यक्ति 'कर्म बन्धन' से मुक्त हो सकता है और तभी वह मोक्ष का अधिकारी भी बन सकता है।***

1(a)* पुनर्जन्म का सिद्धान्त :-** मानव योनि में किए गये ***पापों व ***पुण्यों*** के फलस्वरूप जीवात्मा को बारम्बार जीवन-मृत्यु व जीवन की अनन्त यात्राऐं करने को विवश होना पड़ता है। चौरासी (84) लाख निकृष्ट योनियों की पीड़ा का अनुभव यदि उसे एक बार भी हो जाये, तो बहुत सम्भव है, कि उसका विवेक जाग जाये और परमात्मा की

ओर उसका मन मुड़ जाये। मृत्यु व जन्म काल में अधिकांश प्राणी गहन यातनाओं (पीड़ाओं) को भोगते देखे जाते हैं। सिर्फ मृत्यु व जन्म की पीड़ाओं के अतिरिक्त बचपन से लेकर अन्तिम समय तक कर्म के सिद्धान्त के फलस्वरूप अधिकांश मानव अनेक अभावों, शारीरिक रोगों, अपमानों, मानसिक अवसादों तथा बहुत प्रकार की त्रासदियों से गुजरने को विवश रहते हैं। अतएव इस प्राकृतिक सिद्धान्त के ज्ञान से मानव के अन्दर उस विवेक की जाग्रति होनी चाहिए, कि वह बारम्बार के जन्म व मृत्यु से छुटकारा प्राप्त करे, ताकि सभी प्रकार की पीड़ाओं से मुक्ति मिल जावे अर्थात् ***'मोक्ष'*** प्राप्ति की अभिलाषा हर समझदार व्यक्ति का जीवन लक्ष्य बन जाए, इस सिद्धान्त से हमें यही शिक्षा ग्रहण करनी है।

2. अनुलोम एवं विलोम अथवा पूरकता (Complementarity) का सिद्धान्त :- इस सृष्टि में विधाता ने हर वस्तु के विलोम अथवा पूरक (Complementary) की रचना की है, जिस कारण सुख-दुःख, पाप-पुण्य, जीवन-मृत्यु आदि असंख्य विविधताओं के मध्य यह जीवन प्रवाहमान रहता है। भगवान शंकर के कण्ठ में जो हलाहल विष का प्रतीकात्मक संकेत किया गया है, उसका अर्थ यही है, कि मानव को शिवमय बनने के लिए जीवन की विषमताओं को भी हँसते-हँसते स्वीकार करना चाहिए तभी मानव को जीवन के चरम लक्ष्य-(मोक्ष) की प्राप्ति सम्भव है। शिव दरबार के सभी वाहन शरीर रूप में शत्रु हैं, परन्तु **'शरीर-भाव'** त्यागने पर **'आत्मिक-भाव'** में रहते हुए आपस में प्रेम से रहते हैं। अतएव उपरोक्त 'अनुलोम-विलोमता' के सिद्धान्त को समझ कर जो साधक अनुकूल एवम् प्रतिकूल परिस्थितियों को बिना प्रतिक्रिया के सहन कर लेता है, वही इस मायामय संसार को पार कर पाता है। भारतीय अध्यात्म में एक शब्द है ***'आनन्द'***, जिसका विलोम नहीं है, क्योंकि परमात्मा सदैव आनन्द में रहता है। इसी स्थिति को प्राप्त करना मानव जीवन का लक्ष्य है। इसी को ईश्वर प्राप्ति कहा गया है।

श्रीमद्भगवद् गीता [a] में भी यही संदेश दिया गया है, कि जिनका मन प्रिय अथवा अप्रिय की प्राप्ति पर न हर्षित होता है और न ही उद्विग्न, जो विषयों में आसक्ति से रहित हैं, उन्हें ही अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है।

---

a ***इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।।*** *(गीता-5/19)*
अर्थ :- जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्द परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही स्थित हैं।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।। *(गीता-5/20)*
अर्थ :- जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं होता और अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न नहीं होता, वह स्थिर बुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित है।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्। स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।। *(गीता-5/21)*
अर्थ :- बाहर के विषयों से आसक्ति रहित अन्तःकरण वाला साधक आत्मा में स्थित जो ध्यान जनित सात्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है। तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूप योग में अभिन्न भाव से स्थित पुरुष अक्षय आनन्द का अनुभव करता है।

3. कर्म का सिद्धान्त :- ईश्वर और प्रकृति के संयोग से सृष्टि एवम् जीवात्माओं का सृजन होता है तथा ईश्वर सभी जीवात्माओं और प्रकृति पर कर्म के सिद्धान्त के आधार पर शासन करते हैं। मानव जीवन में अनन्त घटनाएं घटती रहती हैं। इन सभी घटनाओं का मूल किसी न किसी पूर्व कर्म में ढूँढ़ा जा सकता है। *द्वितीय सत्र में 'कर्म के सिद्धान्त' पर कुछ घटनाओं की चर्चा की गयी है और उन कर्मों के बीज का खुलासा भी किया गया है,* जैसे - नौजवान हाथी का हजारों चींटियों द्वारा खा लिये जाने का मूल ***'कारण-बीज'*** पूर्व जन्म में मछुआरे के रूप में था तथा भीष्म पितामह की बाणों की चुभन की पीड़ा एक साँप को काँटों पर फेंके जाने में थी, इत्यादि।

इस महान सिद्धान्त से यह शिक्षा मिलती है, कि जब तक कर्म का एक भी बीज शेष रहेगा, तब तक मोक्ष मिलना असम्भव है, अतएव सर्वप्रथम नकारात्मक कर्मों पर पूरा अंकुश लगाना होगा अर्थात् - क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, भय, हिंसा जैसे कर्मों को त्यागना होगा। क्योंकि सभी प्रकार के नकारात्मक कर्मों का प्रारम्भ कामनाओं से होता है, ***इसीलिए मानव जीवन का सबसे बड़ा काँटा कामनाएं ही हैं, अतएव इन पर पूरी तरह से विजय पानी होगी***[a] तभी मानव संसार सागर से पार जा सकता है। क्योंकि इच्छाओं के नाश होने पर ही सत्कर्म और दुष्कर्म दोनों प्रकार के कर्मों के बीज का नाश हो सकेगा तथा हमारे अवचेतन मन (Sub-conscious mind) के बीज रहित हो जाने पर पुनर्जन्म का कारण भी समाप्त हो जायेगा।

4. मोक्ष का सिद्धान्त :- भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को पूर्ण रूप से सुखी बनाने के लिए अनेक खोजें की हैं और मोक्ष जैसी खोज अपने आप में श्रेष्ठतम विचार है। इस महान रहस्य को उजागर करने के पश्चात् मानव की सोच ही सम्पूर्ण रूप से बदल गयी है। उसे अपने जीवन के महान लक्ष्य की समझ प्राप्त हुई है अर्थात् महान विवेक की प्राप्ति हुई है। मोक्ष प्राप्ति का विश्लेषण ऊपर की पंक्तियों में दिया जा चुका है। इस सिद्धान्त से यह समझ प्राप्त होती है, कि जीवात्मा जिस उद्गम से अलग हुई थी, मोक्ष की प्राप्ति के पश्चात् वह उसी महासमुद्र

---

a काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। (गीता-3/37)

अर्थ :- इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न हुआ ***यह काम ही क्रोध है, यह ही महाअशन अर्थात् अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला और बड़ा पापी है, इस विषय में इसको ही तू वैरी जान।***

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।। (गीता-3/38)

अर्थ :- जैसे धुएं से अग्नि और मल से दर्पण तथा जेर से गर्भ ढका रहता है, ***वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है।***

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।। (गीता-3/39)

अर्थ :- ***और हे अर्जुन ! ज्ञानियों के इस अग्नि सदृश तृप्त न होने वाली नित्य बैरी कामनाओं से ज्ञान ढका हुआ है।***

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।। (गीता-3/40)

अर्थ :- इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसके वासस्थान कहे जाते हैं और ***यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को मोहित करता है।***

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।। (गीता-3/41)

अर्थ :- इसलिये हे अर्जुन ! ***तूं पहले इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले इस काम पापी को निश्चयपूर्वक मार।***

में लीन हो जाती है।

5. स्वर्ग-नरक एवम् मृत्युलोक :- सतत् प्रवाहमान जीवन अपने कर्मों के अनुरूप भौतिक शरीर धारण करने के पूर्व कुछ समय के लिए अन्तरिक्ष में किसी न किसी स्थान पर अपनी अच्छी-बुरी स्मृतियों को स्मरण करते हुए दुःखों व सुखों की अनुभूति करता होगा, यह स्वाभाविक है। इन्हीं दुःख व सुखानुभूतियों का मूर्तिकरण करके भारतीय मनीषियों ने ग्रन्थों में स्वर्ग व नरक के दृश्यों का वर्णन विशेषकर गरुड़ पुराण में अनेक प्रकार के नरकों के रूप में किया है। कुछ मुख्य-मुख्य नाम इस प्रकार से हैं - *(i)* कुम्भी पाक *(ii)* रौरव एवम् अन्धतामिस्र तथा *(iii)* वैतरणी नदी। ***भारतीय मनीषियों ने कर्मानुसार*** चौरासी लाख प्रवृत्तियों की गणना की है और उन्हीं पाप कर्मों के अनुरूप नरकों की कल्पना भी की गयी है।

इस बात को इस प्रकार समझा जा सकता है, कि जैसे कोई व्यक्ति पेट के दर्द के समय तड़पता हुआ बतलाता है, कि पेट में ऐसा दर्द हो रहा है, मानों कि छुरियाँ चल रही हों अथवा सिर में इतना तेज़ दर्द हो रहा है, मानों हथोड़े पड़ रहे हों। यदि किसी व्यक्ति ने आधा-शीशी का सिरदर्द (Migraine) भोगा हो, तो वह भुक्त भोगी बतला सकता है, कि इस सिर दर्द का रोगी कैसा पागल जैसा हो जाता है। सिर दर्द सूर्योदय से आरम्भ होकर सूर्यास्त तक रहता है और रोगी तड़प-तड़प कर दीवार पर सिर मारने की चेष्टा करता है तथा घबड़ा उठता है। ***'कैन्सर'*** के रोगी की तड़पन ***'रौरव'*** नरक की कल्पना से तथा एड्स के रोगी के कष्ट को ***'कुम्भीपाक'*** नरक से जोड़ा जा सकता है। संक्षेप में अस्पतालों में जाकर देखने से पता लगता है, कि संसार में करोड़ों प्रकार के रोगी हैं, उनके मानसिक भावों को सुनकर इन नरकों के सम्बन्ध में बतलाए गये कष्टों से उनकी तुलना की जा सकती है।

जिन्होंने ***होम्योपैथी*** की रेपर्टरी पढ़ी है, वे बहुत आसानी से इन करोड़ों मानसिक वेदनाओं को समझ सकते हैं, कि रोगी को जो कष्ट होते हैं वे किसी नरक के कष्टों से कम नहीं हैं। होम्योपैथी की रेपर्टरी से यह जानकारी भी मिलती है, कि :-

विशिष्ट प्रकार का दर्द किस होम्यो दवा से दूर होगा। परन्तु उस दवा के भेषज-तत्व-ज्ञान (Materia Medica) को विस्तार से और गहरायी से पढ़ने से वह महत्त्वपूर्ण जानकारी भी मिलती है, कि किस पाप के कारण उस विशिष्ट प्रकार की बीमारी उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ - 'नाइट्रिक एसिड' दवा का रोगी, विरोधी से घृणा करता है, प्रतिशोध चाहता है, क्षमा नहीं करता, परिणामतः निम्न बीमारियाँ हो सकती हैं -

(i) गुदा, योनि द्वार एवम् श्लैष्मिक झिल्ली और त्वचा के जोड़ों के स्थान पर चर्म का चटख़ जाना (Cracked skin)।

(ii) पेशाब में घोड़े के पेशाब जैसी तेज बदबू, पाखाने व पसीने में भी बदबू।

(iii) किसी भी अंग, जैसे - गला, पेशाबनली, गुदा, फेफड़े, आँतों में काँटे की तरह अथवा खपच की जैसी चुभन का अनुभव होना, इत्यादि। वस्तुतः पूरे लक्षणों की जानकारी के लिए होम्योपैथी के भेषज-तत्व को ध्यान से पढ़ना चाहिए। ऊपर बहुत ही संक्षेप में यह समझाने

का प्रयास किया गया है, कि किस पाप के कारण क्या रोग होता है और उस भौतिक रोग को वह विशिष्ट दवा ठीक करती है। वह होम्यो दवा मात्र भौतिक रोग ही ठीक नहीं करती, बल्कि उच्च शक्ति की दवा रोगी के स्वभाव में परिवर्तन भी ला देती है तथा व्यक्ति घृणा करने के स्थान पर क्षमावान तथा सबसे सहयोग करने वाले स्वभाव का भी बन सकता है। यद्यपि यह कार्य बहुत सरल भी नहीं है, परन्तु धैर्यपूर्वक होम्यो दवाओं का सेवन करने पर व्यक्ति के चरित्र के अनेक दोष, जैसे - 'शराब पीना', 'व्यभिचार करना', 'झूठ बोलना' आदि दूर हो सकते हैं तथा व्यक्ति अधिक से अधिक सात्विक वृत्ति का बन सकता है। पागलखानों में यातनाएं झेल रहे अनेक व्यक्ति सही होम्यो उपचार से सामान्य बन सकते हैं।

इसी प्रकार अति कामुक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति की आँतों में घाव (Ulcer) हो सकता है। वह होम्यो तकनीक से तैयार ***'फासफोरस'*** से ठीक हो जाता है तथा संदेहशील एवम् ईर्ष्यालु प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को डिफ्थीरिया रोग (गले में झिल्ली बन जाना), पक्षाघात, हथौड़ों की चोट पड़ने जैसा सिर दर्द होना, रक्तस्राव की प्रवृत्ति आदि अनेक रोग ***'लैकेसिस'*** नामक होम्यो दवा से पूरी तरह से ठीक हो जाते हैं। निरन्तर अधिक से अधिक पाने की अदम्य चाह से अवचेतन मन को जो सन्देश जाता है उससे अनावश्यक कोशिकाओं (cells) का निर्माण होने लगता है। यही अधिकाधिक कोशिकाओं का निर्माण हड्डी, रक्त अथवा तन्तुओं में अर्थात् शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है। इसी को बोन (हड्डी) केन्सर, रक्त (blood) केन्सर अथवा फायब्रायड (Fibroid) आदि नामों से जाना जाता है।

उपरोक्त उद्धरणों से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं :-

(a) शरीर में रोगों की उत्पत्ति, का 'बीज-कारण' काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर (निन्दा करना), घृणा, ईर्ष्या, राग (आसक्ति) एवम् द्वेष जैसे असात्विक विचार हैं।

(b) सर्वप्रथम मन दूषित होता है और संक्रमण के लिए भूमि तैयार होती है तब वातावरण से उसी आवृत्ति (Frequency) का जीवाणु (Bacteria or Virus) शरीर में प्रवेश करता है, कि जिस आवृत्ति की भूमि मानव मन तैयार कर चुका होता है।

(c) आकाश में तैरते जीवाणु परमात्मा द्वारा स्थापित गुप्तचर हैं, जो निरन्तर चौकन्ने रहकर यह निरीक्षण करते रहते हैं, कि कौन-सा व्यक्ति कब कोई पाप कर्म करे, कि वह उसको दण्ड देने के लिए उसके शरीर में प्रवेश कर जाएं। यह कार्य ***'कर्म-दण्ड-विधान'*** के अन्तर्गत प्राकृतिक नियम है, वह अटल है, शाश्वत है।

होम्यो दवा की अपनी एक विशिष्ट आवृत्ति (frequency) होती है और रोग की आवृत्ति और दवा की आवृत्ति ठीक-ठीक मिल जाने पर रोग पूरी तरह से ठीक हो जाता है। याद रहे, कि होम्यो दवा मात्र रोग को ही ठीक नहीं करती, बल्कि रोग की बारम्बार होने की प्रवृत्ति का भी नाश कर देती है।

भारतीय मनीषियों ने इन्हीं सूक्ष्म अध्ययनों के आधार पर खोज करके नियम बनाए थे, ***कि मानव को अपने कल्याण के लिए दस नकारात्मक विचारों (दस सिर वाले रावण) से***

सदैव बच कर रहना चाहिए, नहीं तो इनसे पृथ्वी पर जीवन जीते हुए अनेक प्रकार के रोगों को भोगना होगा तथा अन्तरिक्ष में भी यमदूतों द्वारा पृथ्वी पर के रोगों जैसी यातनाएं दी जायेंगी और उन्हें इन दुर्व्यसनों के कारण निकृष्ट योनियों में भी चक्कर लगाना पड़ सकता है।

6. यज्ञमय जीवन यापन का सिद्धान्त :- प्रकृत्ति में सर्वत्र ***'यज्ञ'*** (निष्काम) कर्म किया जा रहा है। सूर्य, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पर्वत, वृक्ष सभी निरन्तर निष्काम सेवा में रत हैं और इस प्रकार वे मानव को निरन्तर शिक्षा दे रहे हैं, कि ***'यज्ञमय'*** जीवन जीते हुए कर्म करो, मोक्ष प्राप्ति का यह सरलतम प्राकृतिक मार्ग है। कर्म बन्धन से सम्पूर्ण रूप से छुटकारा पाने का ***'निष्काम कर्म '*** श्रेष्ठतम प्राकृतिक मार्ग है। श्रीमद्भगवद् गीता की सम्पूर्ण शिक्षा निष्काम कर्म की शिक्षा है।

7. यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे का सिद्धान्त :- यह सिद्धान्त सृष्टि निर्माण, उसका पालन एवम् विनाश का सुन्दर चित्रण करता है। इस सिद्धान्त की समझ भारतीय मनीषियों की अन्यतम खोजों में से एक है। मानव शरीर में तथा ब्रह्म के शरीर (आकाशगंगा) में हो रही घटनाएँ परस्पर समानान्तर हैं। *(इस विषय पर द्वितीय सत्र में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है)*

इस सिद्धान्त से सृष्टि की विशालता और मानव की तुच्छता का ज्ञान हर जिज्ञासु को हो जाता है। उसे यह भी ज्ञान हो जाता है, कि जब इतनी विशाल सृष्टि का समय-समय पर विनाश होता रहता है, तो क्षण-भंगुर मानव जीवन में अहंकार क्यों किया जाये। संसार की असारता का ज्ञान होने पर साधक स्वतः ईश्वर की ओर मुड़ जाता है तथा मोक्षपथ गामी होकर वह सदा-सदा के लिए इस संसार सागर से पार हो जाता है।

इस सिद्धान्त से मानव जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की शिक्षा भी मिलती है।

पुरुष एवम् स्त्री की ईश्वर तथा प्रकृति से समानता :- द्वितीय सत्र में 'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' नामक प्राकृतिक सिद्धान्त की चर्चा के साथ संलग्न चित्र के आधार पर यह बात स्पष्ट की गयी है, कि अदृश्य ईश्वर एवम् सामान्य मानव के बीच मात्र कामनाओं (इच्छाओं) का भेद होता है, नहीं तो ईश्वर एवम् सामान्य मानव समान हैं, परन्तु प्रत्येक स्त्री के अन्तर मन में माता बनने की प्रकृति प्रदत्त प्रगाढ़ इच्छा रहती है, इसीलिए हर बालिका लगभग एक लाख अण्डाणु लेकर जन्म लेती है। यह स्त्री तथा पुरुष के बीच का मौलिक भेद है। जो स्त्री किन्हीं कारणों से माता नहीं बन पाती, वह जीवन भर इस इच्छापूर्ति हेतु अन्तरमन में छटपटाती रहती है। बालक (Male child) की माँ बनने की स्त्री की विशेष इच्छा रहती है। इस अवशिष्ट इच्छा को वह भावी जीवन तक अपने अवचेतन मन में साथ ले जाती है। प्रत्येक स्त्री के माँ बनने पर उसे अत्यन्त संतुष्टि मिलती है तथा अपने बच्चों के साथ खेलते हुए वह प्रसन्न रहती है, इसीलिए कुछ अपवादों को छोड़कर पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का जीवनकाल लम्बा होता है तथा उनमें दिल की बीमारी का रोग भी कम ही होता है।

विराट का दृश्य :- विश्व पटल पर प्रकृति अदृश्य परमात्मा के साथ मिलकर सतत्

असंख्य संतानों का प्रजनन करती है एवम् उन संतानों के भरण-पोषण का पूरा-पूरा प्रबन्ध भी सतत् करती रहती है। इतना बड़ा कार्य करने के लिए परमात्मा ने प्रकृति को विशाल ऊर्जा से सम्पन्न किया है। उसे आकर्षक एवम् महान सौन्दर्य से भरपूर बनाया है, जिससे परमात्मा रूपी पुरुष को वह अपनी ओर आकर्षित करके जीवात्माओं का प्रजनन करे और **'सृष्टिचक्र'** घूमता रहे। असंख्य प्रकार के मनमोहक हरे-भरे वृक्ष, अनगिनत सुन्दर पुष्प, कल-कल निनाद करती नदियाँ व झरने, हरे-भरे पर्वत, ऊषा काल का लालिमा लिए सूर्योदय एवम् पूर्णिमा की चाँदनी तथा चहचहाते पक्षियों का कलरव, ये सभी मिलकर प्रकृति के सौन्दर्य को ही तो प्रकट करते हैं। यह सौन्दर्य असीम है तथा माधुर्य एवम् कोमलता से भरपूर है। प्रकृति माँ के साथ एकाकार होकर मानव शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति कर सकता है, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रकृति पूरी निष्ठा से ईश्वरीय विधान का अक्षरशः अनुगमन करती है अर्थात् कर्म तथा चक्र के सिद्धान्तों का कठोरता से पालन करती है। वह अनुशासन में रहकर निष्काम कर्म में रत रहती है, **जो धर्म का यथार्थ स्वरूप है।**

मानवीय परिदृश्य :- मानव शरीर रचना (Anatomy) के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि पुरुष और स्त्री प्रत्येक की कोशिकाओं में क्रोमोज़ोमों के तेइस जोड़े होते हैं। उनमें से पुरुष में क्रोमोज़ोम का एक जोड़ा विशिष्ट आकृति वाला होता है, जो लिंग का निर्धारण करता है। स्त्री में सभी क्रोमोज़ोम एक्स-एक्स (XX) आकृति के तथा पुरुष में तेइसवाँ जोड़ा एक्स-वाई (XY) आकृति का होता है। पुरुष में वाई (Y) क्रोमोज़ोम एक्स (X) क्रोमोज़ोम का ही असम्पूर्ण भाग जैसा लगता है। चित्र-6.02 में 'Y' क्रोमोज़ोम को वृत्त द्वारा अलग करके दिखलाया गया है। कदाचित् इसीलिए पुरुष अधिक महत्वाकांक्षी, जिज्ञासु, अपरम्परावादी, शीघ्र उत्तेजनशील प्रवृत्ति (Tendency) का होता है तथा नारी प्रकृति की भाँति ही पुरुष की तुलना में अधिक ऊर्जावान होती है, जिससे वह अपनी संतानों का प्रजनन एवम् पोषण समुचित प्रकार से कर पाती है। प्रकृति के समानान्तर ही परमात्मा ने स्त्री का स्वभाव (प्रवृत्ति) कोमल, सहिष्णु, परम्परावादी, परिचर्या करने में कुशल, सौन्दर्य से भरपूर, सम्वेदनशील, भावना प्रधान एवम् ममतामयी बनाया है, जबकि पुरुष शरीर से बलवान, स्वभाव में कठोर, तर्कशील, खोजी स्वभाव, साहसी प्रवृत्ति का होता है। पुरुष तथा स्त्री दोनों के गुणों के संयोग से ही मानव जीवन की पूर्णता है। अतः स्त्री एवम् पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं, परन्तु पुरुष विवेकशील होने के कारण अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रख सकता है। इसीलिए शास्त्रों की मान्यता है, कि पुरुष वर्ग अपने संयमशील स्वभाव के कारण मोक्ष की प्राप्ति सरलता से कर

स्त्री एवम् पुरुष क्रोमोजोम

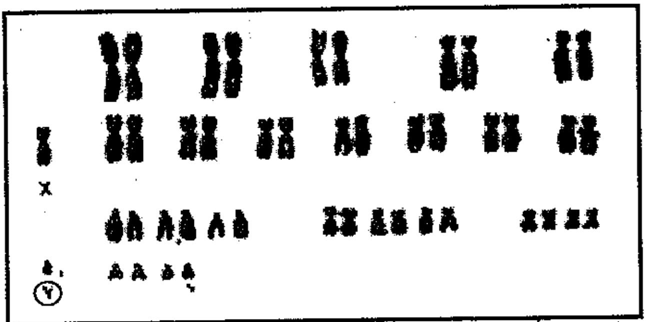

चित्र : 6.02

सकता है। प्रजनन करने के लिए स्त्री को पुरुष के सहयोग की आवश्यकता होती है, जिससे वह अपनी प्रकृति प्रदत्त माता बनने की अदम्य इच्छा की पूर्ति कर पाती है। इस इच्छा पूर्ति हेतु परमात्मा ने स्त्री को उपरोक्त गुण प्रदान किए हैं, जिससे वह पुरुष को आकर्षित करके उसका भरपूर सहयोग प्राप्त करे और संतानों को जन्म दे सके, ताकि सृष्टि चक्र घूमता रहे। संतानों को जन्म देने हेतु उसे सौन्दर्य, कोमलता, सहिष्णुता, परिचर्या करने की कुशलता आदि सभी गुणों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है और यही उसका प्रकृति प्रदत्त धर्म (कर्त्तव्य) भी है, जिससे श्रेष्ठ संतान की उत्पत्ति द्वारा पारिवारिक सुख-शान्ति की प्राप्ति हो। समुचित शिक्षा के अभाव में आज इन बातों को गम्भीरता से नहीं समझा जा रहा है और असंयमित तरीके से संतति उत्पन्न की जा रही है, जिसका दुष्प्रभाव परिवार के अतिरिक्त पूरे समाज पर पड़ रहा है। भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन की ऊँचाइयों को समझा था। ***'सुख-शान्ति-आनन्द-मोक्ष'*** जैसे आदर्श विचारों को आधार बनाकर मानव समाज की रचना की थी। जिसको आज हम सब भूल गये हैं।

स्त्री हर परिवार की धुरी होती है। यदि धुरी यथा-स्थान पर प्रगाढ़ता से स्थिर रहती है तो पूरा परिवार रूपी चक्का भी ठीक से कार्य करता है, नहीं तो पुरुष रूपी परिधि तथा आरे रूपी संतानें सभी बिखर जाती हैं और वह परिवार रूपी चक्का नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है, कि पुरुष रूपी परिधि को पूरी स्वतन्त्रता है, कि वह उन्मुक्तता पूर्ण जीवन बिताए तथा स्त्री प्रकृति की भाँति अपना निष्काम कर्म का पालन करती रहे (निष्काम कर्म का अर्थ है घर-परिवार के सदस्यों, समाज एवम् प्राणी मात्र के लिए सेवा के कार्यों को करना परन्तु उनका प्रतिफल न चाहना)। ***क्योंकि स्त्री एवम् पुरुष दोनों ही प्रकृति के अंश हैं, अतएव दोनों को प्रकृति के अनुसार अनुशासन एवम् निष्काम कर्म का पालन करना कर्त्तव्य है, ताकि सभी को सुख-शान्ति एवम् आनन्द की प्राप्ति हो सके।*** ऐसी ही श्रेष्ठ आदर्श स्थिति को किसी कलाकार ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अर्ध-नारीश्वर की कलाकृति के रूप में चित्रित किया है।

आधुनिक सोच के भावी सम्भावित परिणाम :- स्त्री की शारीरिक बनावट पुरुष से काफी भिन्न होती है। प्रजनन हेतु एक विशिष्ट आयु तक स्त्री की योनि से प्रति माह तीन-चार दिनों तक एक खास प्रकार का स्राव होता है, उन दिनों स्त्री को स्वभावतः आराम की आवश्यकता होती है। आज इस नियम को तोड़ने के कारण स्त्रियों में उनकी वृद्धावस्था में गठियावात जैसे रोग प्रायः देखे जा रहे हैं। गर्भधारण काल में भी स्त्री को तीन-चार माह तक, तत्पश्चात् प्रजनन के बाद भी बच्चे के पोषण के लिए लगभग छह माह तक पूरे संयम की आवश्यकता होती है।

कोई भी भारी सामान उठाना, ऊँचा कूदना अथवा दौड़-भाग करना स्त्रियोचित कार्यों की श्रेणी में नहीं आते, इससे उनके प्रजनन अंगों को हानि की सम्भावना रहती है तथा गर्भ भी गिर सकता है। ये सारे कार्य उनकी मातृत्व भावना एवम् कोमलता जैसे गुणों के प्रतिकूल हैं। आज स्त्रियाँ ***''पुरुषों से कम नहीं''*** का नारा लगा रही हैं तथा पुरुष को बारम्बार चुनौती देने का प्रयास कर रही हैं। इस विचारधारा को फैलाने में तथाकथित अति आधुनिक अल्पज्ञ पुरुष ही उनका नेतृत्व कर रहे हैं। यह सब प्रकृति के नियमों के अनुरूप नहीं है। फौज एवम् पुलिस में तथा घर से बाहर जाकर हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करने का साहस लम्बी अवधि में बहुत

महँगा पड़ सकता है। नारी सुलभ, कोमलता, सौन्दर्य, करुणा, प्रेम एवम् त्याग का भाव नष्ट होकर उनमें कठोरता, दुष्टता तथा स्वार्थ के जीन्स उत्पन्न हो रहे हैं। स्त्रियों द्वारा तबला बजाने से **उनकी उँगलियाँ ही सख्त नहीं बनती, बल्कि उनके स्वभाव की कोमलता तथा सम्वेदनशीलता नष्ट हो सकती है तथा स्वभाव भी कठोर बन सकता है।** भारतीय मनीषियों की ऐसी सोच रही है, कि जिस प्रकार प्रकृति ईश्वर के अधीन रहकर ईश्वर के बनाए नियमों का निष्ठा से पालन करती है, उसी प्रकार स्त्री को भी अपने प्राकृतिक स्वरूप को नष्ट करना श्रेयस्कर नहीं होगा।

कुछ समय पूर्व सरकारी कानून स्त्रियों के हितों के संरक्षण हेतु बनाए गये हैं, परन्तु समाज में जब से उन्होंने आर्थिक स्वतन्त्रता का स्वाद चखा है, तब से इन कानूनों का दुरुपयोग होने लगा है। भूतकाल में स्त्रियाँ परिवार कल्याण की भावना से प्रेरित होने के कारण क्षमा व सहनशीलता की साक्षात् चलती फिरती देवियाँ हुआ करती थीं, जबकि आज उनमें स्वार्थ भाव शिखर को छू रहा है। कदाचित् मानव स्वभाव ही ऐसा है। यह सब कुछ अप्राकृतिक शिक्षा (प्रकृति के सिद्धान्तों के प्रतिकूल शिक्षा) का प्रभाव है, जिसके परिणाम अगले तीन चार सौ पीढ़ियों में स्पष्ट हो सकते हैं। आज अपना सौन्दर्य बनाए रखने की प्रबल इच्छा के कारण एवम् सरकारी अथवा प्राइवेट प्रतिष्ठानों में कार्यरत उच्चपदस्थ महिलाओं में बच्चे पैदा करने के प्रति नकारात्मक भाव देखने में आता है। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार सम्भव है, कि कुछ पीढ़ियों में उनकी प्रजनन शक्ति कम होते-होते समाप्त ही हो जाये, तब प्रकृति प्रदत्त उनका महत्त्वपूर्ण कार्य नष्ट हो सकता है और सृष्टि का क्रम बिगड़ सकता है।

मानव चित्त का कार्य है सृजन करना। जिस-जिस प्रकार के विचार एवं क्रियाकलाप स्त्रियाँ लम्बे समय तक दुहराती रहेंगी, उसी-उसी प्रकार के स्वसंकेत (Auto-Suggestions) अवचेतन मन को लगातार पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिलते रहेंगे। परिणाम होगा, कि उसी प्रकार की घटनाओं का सृजन होने लगेगा। ***शनैः-शनैः उनमें पुरुष वर्ग जैसे कार्य करने की प्रवृत्ति में उत्तरोत्तर विकास होता जायेगा तथा बच्चे पैदा करने का कार्य शिथिल होते-होते बन्ध्यत्व का विकास होने लगेगा। धीरे-धीरे संतानें कम पैदा होते-होते सृष्टि का सारा क्रम उलट-पलट होना स्वाभाविक है।*** अवचेतन मन की इस प्रकार की प्रक्रिया में 15000 से 20000 वर्ष तक का समय लग सकता है। इस सुदूर भविष्य को एवम् अवचेतन मन की शक्ति को आज हम पहचान नहीं पा रहे हैं। यह बात जितनी शीघ्र हमारी समझ में आ जाए, उतना ही मानव समाज के हित में होगा। एक अध्ययन से यह पता लगा है, कि पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों के स्वर यन्त्र में कोमलता के स्थान पर भारीपन आया है अर्थात् उनमें पुरुषों जैसी vocal chord का विकास आरम्भ हो चुका है। क्योंकि फौज व पुलिस में चिल्लाकर हुक्म देने के निरन्तर अभ्यास के कारण ऐसा होना स्वाभाविक है।

सामान्यतया यह देखा जाता है, कि चोरों की आँखें फूली-फूली, बड़ी-बड़ी हो जाती हैं, क्योंकि उन्हें चौकन्ना रहकर रात्रि जागरण करना होता है। हिंसा पूर्ण कृत्यों को करते-करते डाकू तथा जल्लादों के चेहरे भयानक बन जाते हैं। यह सब अवचेतन मन को मिल रहे स्व-संकेतों (Auto-Suggestions) से हुई सृजनशीलता का परिणाम है। क्योंकि प्रकृति का

यह शाश्वत सिद्धान्त है, कि जैसा हम सोचते तथा करते हैं, वैसे हम बन जाते हैं *(What we think, so we become)*। आज समाज में स्त्रियाँ ठगी, गिरहकटी, चोरी, व्यभिचार एवम् जघन्य हत्याओं में पुरुष के समान ही सक्रिय हैं। यह सब कुछ स्त्रियों द्वारा घर से बाहर आकर पुरुष तुल्य कार्य करने की महत्वाकांक्षा का विकृत रूप ही तो है। स्त्रियों द्वारा पुरुष तुल्य कार्य करने का एक परिणाम यह भी हो रहा है, कि किम्पुरुषों (किन्नरों) की एवम् समलिङ्गी विवाहों की संख्या बढ़ रही है।

अवचेतन मन की सृजनात्मक शक्ति को ध्यान में रखते हुए भारतीय वास्तु-शास्त्र में अनेक बातों पर अंकुश लगाया गया है तथा सकारात्मक सुझाव भी दिए गये हैं। जैसे - घर में काँटे वाले पौधे, कैक्टस आदि नहीं लगाना चाहिए, दरवाजे पर वन्दनवार लगाने, शुभ लाभ लिखने, रंगोली [a] बनाने जैसे सकारात्मक दृश्य नित्य प्रति बनाने से अवचेतन मन की सृजनात्मक शक्ति को शुभ संदेश जाते हैं आदि आदि।

पातिव्रत धर्म से मोक्ष :- धर्म के स्वरूप की व्याख्या करते हुए सत्र-दो में लिखा गया है, कि प्रकृति में उच्च कोटि की व्यवस्था इसलिए दिखलायी पड़ती है, क्योंकि पूरी सृष्टि में सर्वत्र कठोर नियमबद्धता (अनुशासन) एवम् निष्काम कर्म, इन दो सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन हो रहा है। अतएव इन दोनों बातों का जो भी मानव पालन करेगा, उसे मोक्ष स्वतः ही मिल जायेगा। ये दोनों सूत्र प्रकृति के आधारभूत सिद्धान्त हैं और यही धर्म का सच्चा स्वरूप भी है।

बच्चों की परिचर्या (सेवा) हर माता स्वस्फूर्त भावना से करती है, क्योंकि बच्चे अपनी माता के अंश होते हैं। परन्तु पति के प्रति उसकी सेवा भावना के लिए आर्थिक निर्भरता अथवा मोक्ष प्राप्ति ही प्रेरणा बन सकते हैं; वरना स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के पश्चात् पति की परिचर्या (सेवा) करने अथवा न करने के लिए स्वतन्त्र है और आधुनिक युग में यह हो भी रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है, कि पति अपनी मनमानी करता रहे तथा पत्नी उसकी ग़लत बातों को अनन्त काल तक सहन करती रहे, जैसा अनेक परिवारों में होता भी है। स्त्री कहाँ तक एक पक्षीय कर्त्तव्य (धर्म) का निर्वहन कर सकती है ? पति को भी नियमबद्धता तथा प्राणीमात्र के प्रति निष्काम सेवा के मार्ग पर चलना होगा, तभी उसको भी मोक्ष प्राप्त होगा।

स्त्री का परिवार से बाहर जाने पर अन्य पुरुषों से सम्पर्क उसके अन्दर कई प्रकार की इच्छाओं को जन्म देता है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने पर उसकी पति पर निर्भरता मात्र सामाजिक बन्धन तक ही सीमित रह जाती है। इस प्रकार स्त्री का भावी जीवन सुख-शान्ति की प्राप्ति के लक्ष्य से दूर होता जाता है। वर्णसंकर सन्तानोत्पत्ति से समाज का चारित्रिक पतन एवम् पारिवारिक कलह तथा बिखराव स्वाभाविक बातें बनने लगती हैं, जो आज पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में आकर भारत में भी हो रही हैं।

एक पौराणिक कथा के अनुसार सती जी द्वारा शिवजी की अवज्ञा की परिणति उनके शरीर त्याग में हुई। इसका अर्थ यह हुआ, कि जब भी प्रकृति ईश्वरीय विधान के प्रतिकूल व्यवहार

---

a इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु पुस्तक के भाग-3 में ''मंगल कामना के प्रतीक'' नामक लेख संलग्न है।

करती है, उसका विनाश हो जाता है। भारतीय संस्कृति की सोच में सम्पूर्णता की सोच है तथा वह प्राकृतिक नियमों पर आधारित है, जिस पर चलकर स्त्री को स्वतः मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। स्त्री का परिवार के भीतर रहकर अपने बच्चों को संस्कारित करने तथा अपने घर-परिवार को स्वर्ग बनाते हुए स्वयम् को तथा अपने पति को मोक्षपथ गामी बनाने की मुख्य भूमिका है। प्रकृति का एक ही पति परमात्मा है और प्रकृति अपने पूरे जीवनकाल में इस व्रत का निर्वहन करती है। इसी आदर्श का निष्ठापूर्वक पालन करने के कारण सती सावित्री, अनुसुइया एवम् सीता जैसी आदर्श नारियाँ भारतीय संस्कृति की प्रकाश स्तम्भ हैं। समाज को ***'अर्थ प्रवण'*** के स्थान पर ***'मोक्ष प्रवण'*** बनाने से ही सुख-शान्ति एवम् आनन्द का प्रवाह सतत एवम् स्थायी बनेगा।

8-9. निर्गुण-निराकार एवम् सगुण-साकार उपासना के मार्ग के सिद्धान्त :- सगुण-साकार उपासना जन साधारण के लिए श्रेष्ठ है तथा निर्गुण-निराकार उपासना का सिद्धान्त बुद्धिवादी साधक के लिए श्रेष्ठ है। इन दोनों मार्गों में कोई विरोध नहीं है। **आत्मा एवम् परमात्मा दोनों ही निराकार हैं, परन्तु हैं दोनों समान गुणधर्मा, अतएव मानव को अपनी निराकार आत्मा का ज्ञान किसी माध्यम से ही सम्भव है।** जैसे कोई मानव अपने आप को दर्पण के माध्यम से ही पहचान (देख) सकता है, इसी प्रकार परमात्मा (आत्मा) की मूर्ति बनाकर परमात्मा (आत्मा) को पहचाने (देखे) जाने की सगुण-साकार साधना पद्धति अत्यन्त व्यावहारिक तकनीक है।

साहित्यिक स्वरूप

भारतीय 'धर्म दर्शन' :- भारतीय धर्म-दर्शन के दो पक्ष हैं। पहला है ***'संस्कृति'***, जिसमें सौन्दर्य है, माधुर्य है, जैसे पारिजात के वृक्ष के पुष्पों की सुगन्ध दूर-दूर तक फैली होती है, उसी प्रकार ***'राम-कथा'***, ***'कृष्ण-कथा'*** द्वारा 'भारतीय-संस्कृति' की सुगन्ध देश-विदेश में फैल रही है। वेद, तन्त्र, वेदांग, उपवेद, योगमार्ग, मंत्र एवम् शास्त्र टहनियाँ हैं। समस्त पुराणों में लिखी कथाएं इस वृक्ष की पत्तियाँ हैं। 'कृष्ण-जन्माष्टमी', 'रामलीला', 'कुम्भ-स्नान', 'तीर्थों के दर्शन', 'गंगा-स्नान', 'होली', 'दीपावली', 'दशहरा-मिलन', वाद्य, संगीत, भरत-नाट्यम्, ओडिसी, मन्दिरों की साजो-सज्जा, साहित्य, चित्रकला, स्थापत्यकला आदि, संक्षेप में ये सभी भारतीय ***'धर्म-दर्शन'*** रूपी वृक्ष के सुन्दर रसीले फल हैं। यह सब उस विशाल वृक्ष का बाह्य रूप है, जिसे संस्कृति कहते हैं, क्योंकि संस्कृति में आम के फलों जैसा माधुर्य एवम् रसीलापन है। अतः जनता प्रसाद रूप में खूब अच्छे एवम् पौष्टिक पकवान बनाती है, खाती है और त्यौहारों तथा लीलाओं का आनन्द लेती है *('संस्कृति' पर विस्तार से चर्चा तृतीय सत्र में की जा चुकी है)।* ***परन्तु दर्शन का मूल है 'धर्म', जो मिट्टी में छुपा रहता है, जिससे संस्कृति को पोषण मिलता है। क्योंकि वैदिक धर्म दर्शन अर्थात् धर्म एवम् संस्कृति का ताना-बाना कुछ इस प्रकार बुना गया है, कि एक को दूसरे से अलग करके देखना सरल कार्य नहीं है, इसी कारण आम जनता अज्ञानतावश 'संस्कृति' को ही 'धर्म' समझती है।***

'धर्म-दर्शन' रूपी वृक्ष (संस्कृति + धर्म)

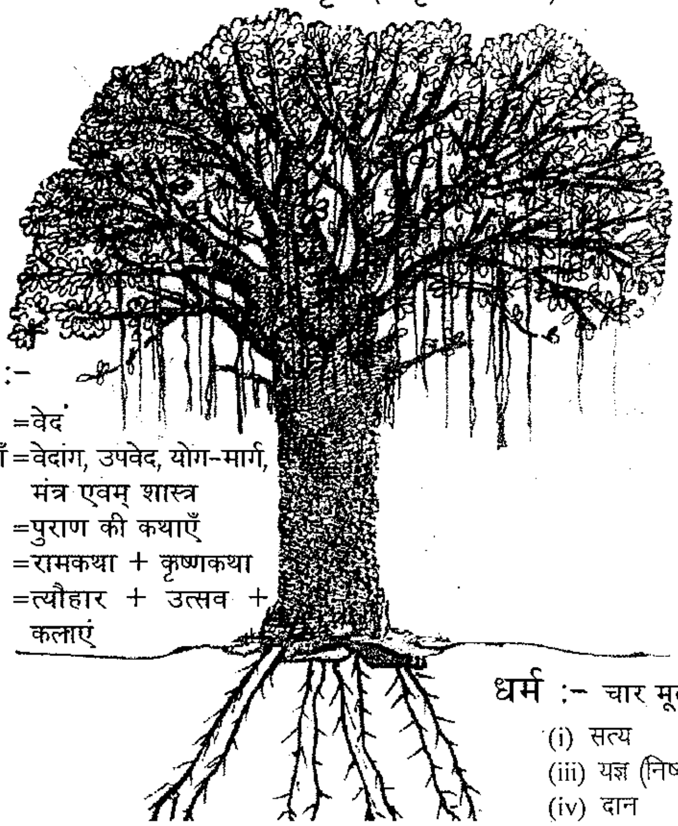

चित्र : 6.01

परिभाषाएं :-

चारों वेदों में निहित ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान = परा विद्या [a]

चार वेद + छह वेदांगों में निहित ज्ञान = अपरा विद्या [a]

A..वेदांग :- निम्नांकित छह ग्रंथो को वेदांग के नाम से जाना जाता है।

(i) **शिक्षा** : वेदों में लिखित संस्कृत भाषा को यथार्थ उच्चारण करने की विधि।

(ii) **कल्प** : यज्ञों को करने की विधि का ज्ञान।

(iii) **व्याकरण** : शब्दों का अनुशासन, प्रकृति-प्रत्यय, विभाग पूर्वक शब्द साधन की प्रक्रिया, शब्दार्थ बोध के प्रकार; शब्द प्रयोग आदि के विषयों का उपदेश।

(iv) **निरुक्त** : वैदिक शब्दों का कोष, अर्थात् अमुक पद अमुक वस्तु का वाचक है, यह बात इसमें कारण सहित बतलायी गयी है।

(v) **छन्द** : वैदिक छन्दों की जाति और भेद बतलाने वाली विद्या।

(vi) **ज्योतिष** : ग्रह नक्षत्रों की स्थिति, गति तथा उनसे हमारा सम्बन्ध आदि पर विचार।

---

a संदर्भ :- मण्डकोषनिषद - 1/5-6

B. उपवेद : निम्नलिखित ग्रंथो की गणना उपवेद के अन्तर्गत की जाती है।
(a) आयुर्वेद (b) धनुर्वेद (c) गंधर्वेद (d) स्थापत्य वेद

C. मंत्र :- निम्नलिखित ग्रंथों की गणना मंत्र के अन्तर्गत की जाती है।
(i) ब्राह्मण (ii) आरण्यक (iii) उपनिषद्

D. शास्त्रों के सम्बन्ध में विवरण आगामी पृष्ठों में देखें।

वैदिक धर्म-दर्शन उसके इतिहास एवम् प्राकृतिक सिद्धान्तों से धर्म के लक्षणों के विकास पर ऊपर चर्चा की जा चुकी है। भारतीय मनीषियों ने लम्बे काल तक अपने शोधपूर्ण चिन्तन, मन्थन एवम् अनुभवों के आधार पर जो ज्ञान लिपिबद्ध किया है, उन ग्रंथों की संक्षिप्त झलक प्रस्तुत है। वस्तुतः ये महान ग्रंथ ऐसे हैं, जो मानव समाज को युगों-युगों तक मार्गदर्शन देते रहेंगे। भारतीयों द्वारा लिपिबद्ध की गयी यह ज्ञानगंगा हमें विरासत में मिली अनमोल धरोहर है।

साहित्यिक रचनाएं :- किसी भी समाज का हृदय उसका साहित्य होता है। यदि वह जीवन्त है, तो समाज जीवित रहता है, यदि वह नष्ट हो जाये अथवा समाज उन्हें छोड़ दे, तो भी समाज दिशाहीन हो जाता है। महान भारतीयों द्वारा सृजित इस श्रेष्ठतम साहित्य की अति संक्षिप्त झलक नीचे दी जा रही है।

धर्म सम्बन्धी :- वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रंथ, दर्शनशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता एवम् रामचरितमानस जैसे सद्ग्रंथों की रचना करके भारतीय ऋषिगण भारत की युगों-युगों तक आने वाली पीढ़ी के हित के लिए जो ज्ञान दे गये हैं, वह विश्व में अद्वितीय है। इसी ज्ञान के कारण वह अब तक विश्वगुरु बना रहा, परन्तु पिछली कुछ भूलों से आज वैदिक धर्म प्रताड़ित हो रहा है।

वेद चार हैं :- *1.* सामवेद *2.* यजुर्वेद *3.* ऋग्वेद *4.* अथर्ववेद।

1. सामवेद :-	मंत्र संख्या	-	1875
	पूर्वार्चक	-	अध्याय-6, मंत्र 650
	उत्तरार्चक	-	अध्याय-21, मंत्र 1225

2. यजुर्वेद :- यज्ञ के मंत्रों का संग्रह। सांसारिक भोगों की प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन इस वेद में किया गया है। यह वेद कर्मकाण्ड प्रधान है।

शुक्ल यजुर्वेद	-	मंत्र संख्या 1975
कृष्ण यजुर्वेद	-	विनियोग वाक्य + मंत्र

3. ऋग्वेद :- इस वेद में अनेक देवताओं की स्तुतियों का संग्रह है।

मण्डल—10;	मंत्र संख्या	-	10552

4. अथर्ववेद :- इस वेद में आत्मदर्शन एवम् मन की चंचलता पर रोक के मंत्रों का संकलन है। इसमें कई भौतिक विद्याओं का समावेश भी है।

कुल मंत्र संख्या	-	5987

मुख्य ब्राह्मण ग्रंथ :- इन ग्रंथों में वेदों की व्याख्या की गई है।
(a) एतरेय *(b)* शतपथ *(c)* तैत्तरीय *(d)* गोपथ।

दर्शनशास्त्र छह हैं :-

(i)* न्याय दर्शन (गौतम ऋषि द्वारा प्रणीत)** :- जन्म का कारण, जीवन जीते समय तमाम प्रकार के कर्मों से निर्मित संस्कारों (सूचनाओं) का एक कम्प्यूटरीकृत लेखा-जोखा एक विशिष्ट प्रकार की प्रवृत्ति का निर्माण करता है, यही प्रवृत्ति (Tendency) भावी जीवन का आधार बनती है। बुद्धि योग के द्वारा ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने पर अर्थात् तत्त्व ज्ञान द्वारा मानव जन्म-मरण के कारणरूप इस ***'प्रवृत्ति' के निर्माण को रोक सकता है तथा सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो सकता है।

***(ii)* वैशेषिक दर्शन (कणाद ऋषि द्वारा प्रणीत)** :- संसार का निर्माण अणु-परमाणुओं से हुआ है। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, मन, काल, दिक्, जीवात्मा, वे सभी पदार्थ हैं। सम्पूर्ण पदार्थ जगत किसी अव्यक्त शक्ति (ब्रह्म) से उत्पन्न होता है। संसार के सभी पदार्थ नाशवान हैं, इस बात को समझ लेने पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है और तभी मानव का सम्पूर्ण रूप से कल्याण होता है। इस दर्शन में परमात्म शक्ति को मान्यता दी गयी है।

***(iii)* अष्टांगयोग दर्शन (पातञ्जलि ऋषि द्वारा प्रणीत)** :- इस दर्शन के अनुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा अर्थात् कुंडलिनी साधना द्वारा कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। इस दर्शन में ईश्वर को मान्यता दी गयी है।

***(iv)* सांख्य दर्शन (कपिल मुनि द्वारा प्रणीत)** :- ज्ञान द्वारा मुक्ति लाभ होता है। पुरुष एवम् प्रकृति के सम्बन्ध में ठीक-ठीक जानकारी से दुःखों की निवृत्ति होती है। जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख को समान समझ कर इसे स्वीकार करने की समबुद्धि की क्षमता का विकास होता है [a] तथा वैराग्य एवम् विवेक ज्ञान से पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है, तब मानव को कैवल्य पद (मोक्ष) की प्राप्ति अर्थात् आत्यान्तिक आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

***(v)* पूर्व मीमांसा (जैमिनी ऋषि द्वारा प्रणीत)** :- कर्मकाण्ड द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। मन्त्रों के उच्चारण में त्रुटि नहीं होनी चाहिए, नहीं तो अभीष्ट लाभ नहीं होगा। इस शास्त्र में ईश्वर की मान्यता नहीं है। मन्त्र ही देवता है। वेद के कोई कर्त्ता नहीं हैं।

***(vi)* उत्तर मीमांसा या वेदान्त दर्शन (महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत)** :- अविद्या के कारण चैतन्य जीवात्मा, मिथ्या जगत को सत्य मानकर संसार में बद्ध हो जाता है। संसार भ्रम मात्र है (ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या)। शून्य से नहीं अपितु परमात्मा से प्रकृति की अर्थात् पदार्थ जगत की उत्पत्ति होती है। जीवात्मा एवम् ब्रह्म एक हैं (सोऽहम्)। ब्रह्म की अनुभूति होने से जीवात्मा

---

a ***सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।*** *(गीता-2/38)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! (यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्य की इच्छा न भी हो तो भी) सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझ कर युद्ध के लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।
एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु। बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। *(गीता-2/39)*
अर्थ :- हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग (सांख्य योग) के विषय में कही गई और इसी को अब निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन, कि जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह से नाश करेगा।

के संचित एवम् क्रियमाण सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं, मात्र प्रारब्ध भोग कर वह मुक्त होकर आनन्दमय पद की प्राप्ति कर लेता है। इस दर्शन में परमात्मा की मान्यता है।

स्मृतियाँ :- समाज को दिशा-निर्देश देने हेतु मनु, याज्ञवलक्य, व्यास, पाराशर, गौतम आदि अनेक ऋषियों ने शास्त्र लिखे, ताकि हर व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे और समाज में शान्ति व्यवस्था बनी रहे। दिशा-निर्देश के साथ-साथ दण्ड विधान भी सुझाए गये हैं। मुख्य स्मृतियाँ अठारह हैं।

पुराण :- पुराण अनेक हैं, उनमें अठारह प्रमुख हैं। भागवत् पुराण सर्वश्रेष्ठ है। इस आधिदैविक साहित्य की रचना का उद्देश्य बहुत ही विस्तृत है। देवी-देवताओं पर आरोपित कथाओं द्वारा सुरुचिपूर्ण साहित्य रचकर पौराणिकों ने बहुत महान कार्य किया है। पुराणों के लेखाकार वास्तव में दिव्य दृष्टि रखते थे। इन पुराणों में लिखी कथाओं के कारण ही बारह सौ वर्षों से अधिक समय से चले आ रहे विध्वंस के बावजूद वैदिक धर्म की कड़ी टूट नहीं पायी और वह आज भी सुरक्षित है। प्रतीकों की भाषा में लिखी गयी इन पुराणों की शैली कुछ इस प्रकार की है, कि उनके शाब्दिक अर्थ कुछ और हैं, जबकि अन्तर्निहित अर्थ बहुत वैज्ञानिकता पूर्ण हैं। इनकी गहराई की छानबीन की आज परम आवश्यकता है। साहित्य लेखन के क्षेत्र में इस प्रकार की भाषा का आविष्कार अपने आप में भारतीय मनीषियों का श्रेष्ठतम कार्य है। पुराणों में सृष्टि रचना का वर्णन आधुनिक विज्ञान की खोज से लगभग मेल खाता है। भाषा को रूपान्तरित (Decode) भर करने की आवश्यकता है।

प्रतिपादित वाद (मार्ग) :- वैदिक धर्म के छह मार्ग हैं :-

(a) अद्वैत *(b)* विशिष्टाद्वैत *(c)* द्वैत *(d)* शुद्धाद्वैत *(e)* द्वैताद्वैत *(f)* अचिन्त्य भेदाभेदवाद।

इन सभी वादों में अद्वैतवाद को विज्ञान के माध्यम से ठीक से समझा जा सकता है। अन्य मार्ग भक्ति प्रधान साधकों के निमित्त बतलाए गये हैं। अद्वैतवाद का अर्थ है, कि साधक परमात्मा की इस भाव से उपासना करता है, कि आत्मा ही परमात्मा है (सोऽहम्)।

योग :- योग का अर्थ है - ***परमात्मा से जुड़ना।***

प्रधान योग मार्ग :-

1. निष्काम कर्म योग :- श्रीमद्भगवद् गीता द्वारा प्रतिपादित ***''कर्मण्येव अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''*** [a] का मार्ग अर्जुन जैसे महत्त्वाकांक्षी साधकों के लिए श्रेष्ठ मार्ग है। यह पूर्ण रूप से प्राकृतिक मार्ग भी है, क्योंकि सम्पूर्ण प्रकृति, निराकार परमात्मा का यजन, ***'निष्काम'*** सेवा द्वारा अहर्निश करती रहती है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बना कर अर्जुन जैसे साधकों के हितार्थ इस मार्ग का उपदेश दिया था। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! तू कर्त्तव्य-कर्म [a] कर, परन्तु फल की इच्छा छोड़ दे और निरन्तर मेरे नाम व रूप

---

a ***कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।*** *(गीता-2/47)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार है, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति नहीं होनी चाहिए।

contd. on next page as a_1

का स्मरण करता रह, तू मुझे अवश्य प्राप्त कर लेगा।

2. ज्ञान-विज्ञान योग (**बुद्धि योग**) :- अनेक जन्मों के अभ्यास के बाद परमात्मा किसी जन्म में जीव को ***'बुद्धियोग'*** (विवेक बुद्धि) देता है, जिससे वह ईश्वर को, उसकी सृष्टि रचना को, स्वयम् को जान सके। तत्पश्चात् वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा संसार की असारता तथा जन्म-मरण के मूल कारण को समझ ले और परमात्म तत्त्व का अनुभव कर ले। इस मार्ग में निम्न महावाक्यों में से किसी एक पर चिन्तन-मनन करते-करते परमात्मा में लीन होने का विधान है। ये महावाक्य हैं :-

(a) अयम् आत्मा ब्रह्म (यह आत्मा ब्रह्म ही है) *(b)* सोऽहम् (जो वह परमात्मा है, मैं भी वही हूँ) *(c)* तत्वमसि (जैसा 'तू' अर्थात् वह परमात्मा है, वैसी ही मेरी आत्मा है) *(d)* अहम् ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ)।

वेद में एक और महावाक्य का उल्लेख मिलता है - वह है ***'प्रज्ञानम् ब्रह्म'।*** इस महावाक्य को आधुनिक विज्ञान की भाषा में कहा जाये, तो इसका अर्थ होता है - चित्त (अल्फा प्लेट) पर लिखी जाने वाली जानकारियाँ (Informations) अर्थात् संस्कार। इस प्रकार, ***'प्रज्ञान' को टीक से समझ लेने के पश्चात् 'ब्रह्म' की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि 'प्रज्ञान' ही जन्म-मरण का कारण है। इस मूल कारण को घटित होने से रोकना होगा। सभी प्रकार की साधनाओं का एक मात्र सूत्र यही है। यह निर्गुण-निराकार साधना का मार्ग है। बुद्धि प्रधान साधकों के लिए ज्ञान-विज्ञान योग का विधान है। यह मार्ग सबसे छोटा मार्ग है, परन्तु फिसलन भी बहुत है। अतएव भावना को साथ जोड़कर भक्ति मार्ग का विधान बनाया गया, ताकि हर श्रेणी का साधक सरलता से अनुसरण कर सके।***

3. भक्तियोग :- जन मानस को कीर्तन, भजन, कथा श्रवण द्वारा ईश्वर भाव जगाकर, सन्तगण भावना प्रधान साधकों को परमात्म तत्व का अनुभव कराने का प्रयास करते हैं। रामचरितमानस तथा भागवत् पुराण के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से भक्ति भाव में विशेष वृद्धि होती है और साधक को मुक्ति लाभ होता है। साधक श्रद्धा, विश्वास एवम् प्रेम द्वारा आराध्य देव का यजन करता है तथा द्वैत भाव रखकर परमात्मा की सगुण रूप में उपासना करता है। इस योग में मन की भावना मुख्य है।

---

a, *यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।* (*गीता-3/9*)
अर्थ :- और हे अर्जुन ! यज्ञ (लोक कल्याण) के निमित्त किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों के बन्धन में बँधता है, इसलिये हे अर्जुन ! आसक्ति से रहित होकर, उस यज्ञ के निमित्त, कर्म का भली प्रकार आचरण कर।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।। (*गीता-3/19*)
अर्थ :- इसलिए तू अनासक्त हुआ निरन्तर कर्त्तव्य कर्म का भली प्रकार आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।। (*गीता-8/7*)
अर्थ :- इसलिए हे अर्जुन ! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर, इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन, बुद्धि से युक्त हुआ निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

4. राजयोग (पातञ्जलि योग) :- मुख्य रूप से **'चित्त-वृत्ति निरोध'** के सूत्र पर आधारित यह अष्टांग योग बहुत ही वैज्ञानिक योग है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवम् समाधि इसके आठ अंग हैं। इसमें व्यक्ति का विकास क्रमानुसार किया जाता है इस प्रकार वह अपने लक्ष्य को भेद लेता है।

5. सांख्य योग :- अति अहंकारी साधकों के हितार्थ इस मार्ग का प्रावधान किया गया है। इस योग का वर्णन गीता में भी किया गया है। सभी कार्य ईश्वर द्वारा सम्पादित होते हैं। संसार के सारे कार्य करते हुए इस प्रकार का भाव निरन्तर बनाए रखना, कि ***"इदम् न मम्"*** = यह कार्य मेरे द्वारा नहीं किया गया है अर्थात् इस कार्य की सफलता का श्रेय मुझे नहीं जाता है। सभी कार्य 'ईश्वर' प्रेरणा से होते हैं, मानव तो निमित्त मात्र है। इस प्रकार अहंकार की परत टूट जाती है तथा नये संस्कार चित्त पटल पर लिखे जाने से रुक जाते हैं।

6. तन्त्र योग :- यह योग शरीर सुख में लिप्त व्यक्तियों के हितार्थ सुझाया गया है, परन्तु अधिकांश में तन्त्र मार्गियों की अवनति होती देखी गयी है।

इतिहास ग्रंथ एवम् पुराण :- इन्हें पञ्चम वेद की संज्ञा दी गयी है। इन ग्रंथों के लिखने के मुख्य रूप से निम्नांकित उद्देश्य हैं :-

(a) भय एवम् आतंक काल में अथवा किन्हीं भी कारणों से उत्पन्न मानसिक तनाव के क्षणों में जन साधारण के आस्था-एवम् विश्वास को दृढ़ बनाए रखना। *(b)* उनकी मानसिक अनिश्चितता के समय उनका मार्ग दर्शन करना। *(c)* सांसारिक जीवन के थपेड़ों के वक्त उनको मनोबल प्रदान करना। *(d)* ग्रंथों में दी गयी शिक्षाओं [a] द्वारा मानव जीवन को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाना। *(e)* वेद के गूढ़ अर्थों को सरल [b] भाषा में प्रस्तुत करके उसे सार्वजनीन बनाना। *(f)* नाम एवम् रूप से निर्मित संसार से पार जाने के लिए भक्तों को नाम व रूपधारी

---

a The masses of the Indian people, however have received the teachings of Hinduism not through the upnishads, ***but through a large number of popular tales collected in huge epics, which are the basis of the vast and colourful Indian mythology. One of those epics, the Mahabharata, contains India's favourite religious text, the beautiful spiritual poem of the Bhagwad Gita.*** The Gita, as it is commonly called is a dialogue between the god Krishna and the warrior Arjuna who is in great despair, being forced to combat his own kinsmen in the great family war which forms the main story of the Mahabharata. Krishna disguised as Arjuna's charioteer drives the chariot right between the two armies and in this dramatic setting of the battle field he starts to reveal to Arjuna the most profound truths of Hinduism ..... ***and it becomes clear that the battle of Arjuna is the spiritual battle of human nature.***

(Page 98-99 Tao of Physics, 3rd Edition, Publishers M/s. Flamingo)

b ***श्रीमद् भागवत महापुराण, प्रथम खण्ड, पन्द्रहवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2047 -*** **सूत उवाच :-** ..... व्यास जी द्वारा ऋक्, यजु, साम और अथर्व, इन चार वेदों का उद्धार (पृथक्करण) हुआ। इतिहास और पुराणों को पाँचवाँ वेद कहा जाता है।

अब इस (पाँचवें वेद) के द्वारा स्त्री शूद्र और पतित द्विजाति सबका कल्याण हो जाये, यह सोचकर ***व्यास जी ने महाभारत इतिहास की रचना की।*** *(पृष्ठ-61)*

contd. on next page as b_1

परमात्मा की बाल लीलाओं का रसपान तथा गुणगान कराते हुए उन्हें भाव समाधि तक पहुँचा देना और इस प्रकार के सतत् अभ्यास द्वारा उन्हें संसार सागर से पार करा देना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति एवम् समाज को सुसंस्कृत बनाने हेतु दो मनोवैज्ञानिक महर्षियों द्वारा दो महाकाव्यों :-

(i) ऋषि बालमीकि द्वारा रामायण तथा ***(ii)*** ऋषि वेदव्यास द्वारा महाभारत और पुराणों की रचना की गयी।

आदि कवि बाल्मीकि जी ने ब्रह्म को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया तथा सम्पूर्ण मानव समाज के हित में सार्वकालिक एवम् सतत् नवीन रहने वाले आदर्शपूर्ण जीवन दर्शन का संदेश दिया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम की बाल लीलाओं का चित्रण किया तथा उनके उदात्त एवम् संयमित जीवन दर्शन की झाँकी प्रस्तुत की, जो विश्व की अद्वितीय धरोहर है।

इसी संदर्भ में महाभारत ग्रंथ, जिसका कि श्रीमद्भगवद् गीता एक महत्त्वपूर्ण भाग है, तथा जिसकी रचना भी कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास द्वारा ही की गयी है, एक श्रेष्ठ एवम् उच्च श्रेणी का धर्म ग्रंथ है। भारतीय संस्कृति को ठोस धरातल प्रदान करने में इन ग्रंथों का भारी योगदान है। रामायण, रामचरितमानस, महाभारत, श्रीमद्भगवद् गीता, भागवत पुराण एवम् सूर सागर विश्व की अद्वितीय आध्यात्मिक एवम् आधिदैविक रचनाएं हैं। इन्हीं ग्रंथों के मध्य

---

b, **व्यास उवाच :-** ***महाभारत रचना के बहाने मैंने वेद के अर्थ को खोल दिया है, जिससे स्त्री, शूद्र आदि अपने-अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं*** ..... तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्ण काम सा जान पड़ता है। अवश्य ही अब तक मैंने भगवान को प्राप्त करने वाले धर्मों का प्रायः निरूपण नहीं किया है। *(पृष्ठ-62)*

नारद उवाच :- महाभाग व्यास जी ! आपकी दृष्टि अमोघ है। आप सत्परायण एवम् दृढ़व्रत हैं, इसलिए अब आप सम्पूर्ण जीवों को बन्धन से मुक्त करने के लिए समाधि के द्वारा अचिन्त्य शक्ति भगवान की लीलाओं का स्मरण कीजिए। ..... सर्वसाधारण के हित की दृष्टि से भगवान की लीलाओं का वर्णन कीजिए। *(पृष्ठ-64)*

व्यास जी! आपने धर्म आदि पुरुषार्थों का जैसा निरूपण किया है, भगवान श्रीकृष्ण की महिमा का वैसा निरूपण नहीं किया। ***जिस वाणी से - चाहे वह रस-भाव, अलंकारादि से युक्त ही क्यों न हो - जगत को पवित्र करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के यश का कभी गान नहीं होता ..... वह अपवित्र मानी जाती है।*** इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है, जो दूषित शब्दों से युक्त है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान के सुयश सूचक नामों से युक्त है, वह वाणी लोगों के सारे पापों का नाश कर देती है, वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्ष की प्राप्ति का संक्षिप्त साधन है ***यदि भगवान की भक्ति से रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती।*** *(पृष्ठ-63)*

इसी के समानान्तर रामचरितमानस में संत तुलसीदास जी भी कहते हैं -

भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिन सोह न सोऊ।।
सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहि बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुन ग्राही।।

भावार्थ :- श्रेष्ठ कविता भी राम नाम के बिना शोभा नहीं पाती, परन्तु यदि कोई कविता सुन्दर न भी हो, परन्तु यदि राम नाम से अंकित है तो बुद्धिमान लोग सादर उसे सुनते हैं तथा गान करते हैं। *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 9-10 के मध्य*

भारतीय संस्कृति की पवित्र सरिता सहस्रों वर्षों से भारतीय जनमानस के हृदयों में अनवरत प्रवाहमान है। **संसार का ऐसा कौन-सा श्रेष्ठ विचार है, जो इन ग्रंथों में उपलब्ध न हो। इनमें दी गयी शिक्षाएं सार्वभौमिक तो हैं ही, त्रिकाल सत्य भी हैं। ये ग्रंथ मानव सभ्यता की वैचारिक विकास की चरम सीमा हैं।**

परन्तु आज पश्चिम की विचारधारा भारतभूमि पर हावी हो रही है और ये सारे सद्ग्रंथ भारतीयों के मानस पटल से धीरे-धीरे दूर होते जा रहे हैं।

मंत्र क्या है :- मंत्र का एक अर्थ होता है - ***"मनः त्रायते यः सः मंत्रः"*** अर्थात् जिसके द्वारा चंचल मन का त्राण (रक्षा) हो, अथवा जिसको जपने से इष्ट (इच्छित वस्तु) की प्राप्ति की जा सके। मंत्र कई प्रकार के होते हैं, जैसे - शोध (Research) मंत्र, देवी-देवता की साधना का मंत्र, वशीकरण मंत्र, उच्चाटन मंत्र, मारण मंत्र आदि आदि। शोध (Research) मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ***'गायत्री मंत्र'*** का दिया जा सकता है। जिसमें चार खोजें निहित हैं। देवी-देवताओं को सिद्ध करने अर्थात् उनकी उपासना के मंत्रों में राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, आदि नामों का उल्लेख किया जा सकता है। सर्वप्रथम तो प्राकृतिक ध्वनि से उत्पन्न ***'ॐ'*** नाम, परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम गिना गया। तत्पश्चात् लीला शरीरधारी भगवान के अवतारों में अभिव्यक्त 'राम' एवम् 'कृष्ण' जैसे नामों को महत्त्व दिया गया। शास्त्रों में राम एवम् कृष्ण नामों को परिभाषित करते हुए कहा गया है - ***"यः सर्वत्र रमते सः रामः"*** अर्थात् जो कण-कण में अवस्थित है, प्रकाश स्वरूप है, वही राम है तथा ***"यः कर्षति सः कृष्णः"*** जो सभी को आकृष्ट करता है वही कृष्ण है। ***प्रकाश एवम् आकर्षण दोनों ही प्रकृति के दो स्वरूप हैं। जहाँ प्रकाश है, वहाँ चुम्बकत्व भी है तथा जहाँ चुम्बकत्व है वहाँ प्रकाश भी विद्यमान है। प्रकृति के इन दोनों रूपों के पीछे अव्यक्त परमात्मबल कार्य करता है और अव्यक्त को साक्षात्कार करने की वैज्ञानिक विधि की चर्चा चतुर्थ सत्र के अनुच्छेद 2(i) में की जा चुकी है।***

वस्तुतः सभी नामों एवम् मानवीकृत रूपों की रचना एवम् पूजा विधियों के मूल में उद्देश्य यह रहा है, कि साधक इनके माध्यम से अपने अवचेतन मन (Sub-Conscious Mind) तक स्व-संकेतों (Auto-Suggestions) को भेज सके तथा अवचेतन मन को सक्रिय कर ले, क्योंकि मंत्र (नाम) मूर्ति (रूप) तो अवचेतन मन तक स्व-संकेतों को पहुँचाने के माध्यम भर हैं, कार्य तो अवचेतन मन की शक्ति ही करती है, अतएव मंत्र के शब्दों का जब सात्विकता के साथ स्थिर चित्त होकर अर्थ सहित एक विशिष्ट कालावधि तक मन में चिन्तन किया जाता है अथवा जप किया जाता है, तब मंत्र के शब्दों के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि तरंगों का एक कवच साधक के शरीर के चारों ओर निर्मित हो जाता है, जिससे संकेतों का अन्तर्मन तक पहुँचने का मार्ग सुगम हो जाता है और मंत्र के शब्दार्थ अवचेतन मन की गहरायी तक उतर जाते हैं। परिणामस्वरूप अवचेतन मन की सृजनशीलता क्रियाशील हो उठती है तथा इस प्रकार साधक की मनोकामना की पूर्ति में सहायक हो जाती है।

मंत्रों के सृजन की प्रक्रिया :- ***मंत्रों का सृजन प्रतीकों के सृजन का ही भाग हैं।*** किसी भी देवता के मंत्र में उस देवता के सभी गुणों का पूरा-पूरा समावेश संक्षिप्त रूप से सन्निहित

रहता है। उदाहरण के लिए श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा *'राम'* मंत्र का निम्न प्रकार से विश्लेषण किया गया है -

चौ. :-बंदउँ नाम राम रघुवर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को [a] *।।*

अर्थ :- ***मैं श्री रघुनाथ जी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) के गुणों से परिपूर्ण है अर्थात् कृशानु (कृ-से 'र') के, भानु (भा-से 'आ') के तथा हिमकर (हिम-से 'म') के तीन अक्षरों के संयोग से बना है। 'र' से अर्थ हुआ अग्नि की भाँति सभी पापों को भस्म कर देने वाला। 'आ' से अर्थ हुआ सूर्य की भाँति तेजस्विता एवम् शक्ति के गुणों से भरपूर तथा 'म' से अर्थ हुआ चन्द्रमा की भाँति शीतलता (शान्ति) देने वाला।***

मंत्र की उपरोक्त व्याख्या साहित्य की दृष्टि से की गयी है। परमात्मा ने अपनी सृष्टि में भाँति-भाँति के जीवों, जैसे कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, मानव आदि असंख्य प्रजातियों का सृजन करके उनको किसी न किसी नाम से पहचान प्रदान की है। इसी क्रम में मानव ने महामानव के भी सैंकड़ों-हजारों नामों का सृजन किया है। मूर्तिकरण करके मानवी रूप दिया और मानव के अनुकूल गुणों से भरपूर नाम भी रखे। परमात्मा लीला रूप है, अतएव उसकी लीलाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति का कवियों, लेखकों, नाटककारों ने भाव समाधि में कल्पना करके भक्ति भाव की वृद्धि हेतु लेखन एवम् मंचन किया। शोध होते-होते इस साहित्य ने बहुत विशाल रूप ले लिया था, जबकि आज मंत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी शेष रह गयी लगती है। विश्लेषणात्मक भाग तो पूरी तरह से लुप्त प्राय ही है।

मंत्र विज्ञान पर बहुत ही गम्भीर शोध हुए हैं। मंत्र शक्ति द्वारा अस्त्र-शस्त्रों के नियमन एवम् निर्देशन के प्रयोग प्रचलित थे। आकाश में ही शस्त्रों को नष्ट कर देने की विद्या का प्रयोग आम बात थी। आज विज्ञान द्वारा इसे Star War का नाम दिया गया है तथा यह प्रक्रिया अभी बहुत प्रारम्भिक अवस्था में है। मन की एकाग्रता का यह आलम था, कि कोई शस्त्र मन की एकाग्रता द्वारा शब्द को सुनकर उस दिशा में प्रहार करने पर निशाने को भेद कर लौट भी आता था। ये सारी की सारी विधाएं आज लुप्त हो चुकी हैं। ऋषियों द्वारा यह विधाएं बहुत जोर-शोरों से विकसित की गयी थीं।

एक समय था, जब मंत्रों और यज्ञों का प्रभाव पूरे देश में विस्तृत हो गया था। हर मनोकामना मन्त्रों और यज्ञों के द्वारा पूरी हो जाती थी। पुत्रेष्टि यज्ञ, सूर्य यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, पता नहीं कितने-कितने प्रकार के यज्ञों का ज्ञान इस देश में विकसित हुआ था, परन्तु पिछले बारह सौ वर्षों में इस भारतभूमि का ज्ञान-विज्ञान समेत बहुत कुछ नष्ट कर दिया गया है। आज मानवता के हित में उस सबकी खोज करके पुनर्स्थापना करने की महती आवश्यकता है।

हरिः ॐ तत् सत् !

---

a *श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो. 18-19 के मध्य*